वर्ष ३३ **वैदिक धर्म** अंक १

क्रमांक ३७

पौष, विक्रम संवत् २००८, जनवरी १९५२

वीर पुत्र

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्त्वा गवेषणः स धृष्णुः॥

(ऋ० ७।२०।५)

(वृषा वृषण रणाय जजान) बलवान् पिता बलिष्ठ पुत्रको युद्ध करनेके लिये जन्म दिया करता है (त नर्यं नारी ससूव) उस मनुष्योंके हित करनेके लिये उत्पन्न हुए पुत्रको माता उत्पन्न किया करती है (य नृभ्य' सेनानी' प्र अस्ति) वह जनताका हित करनेवाला वीर पुत्र सेनापति बनता है, (स इन) वह अधिपति बनता है, (सत्त्वा) अपने बलसे शत्रुओंका विनाश करता है, (गवेषण) गायोंको ढूंढकर बढाता है और (धृष्णु) शत्रुपर धैर्यसे आक्रमण करता है।

मातापिताके वीर एव बलवान् पुत्र होना चाहिये। उसे शत्रुका पराभव करना चाहिये तथा यश प्राप्त करना चाहिये। उसे समस्त जनताका हित करना चाहिये। उसे सेनाका आधिपत्य करना चाहिये, राष्ट्रका आधिपत्य करना चाहिये, यदि गायें चुराई गई हो तो उन्हें ढूढकर लाना चाहिये। उनका सरक्षण एव सवर्धन करना चाहिये तथा अपनी शक्ति बढाकर, शत्रुपर आक्रमण करके उनका पराभव करना चाहिये।

आवश्यक सूचनायें

१- गत सितंबर १९५१ ई० की संस्कृत परीक्षाओंके प्रमाणपत्र सभी केन्द्रोंको दिसम्बरके प्रथम सप्ताह तक भेजे जा चुके हैं। प्रमाणपत्र प्राप्त होनेके पश्चात् केन्द्र व्यवस्थापकोंको चाहिये कि वे अपनी सुविधानुसार यथाशीघ्र उन्हें एक समारम्भ करके छात्रोंमें वितरित कर दें।

२- विशारदके उपाधिपत्र जनवरीके प्रथम सप्ताह तक हम सभी केन्द्रोंको भेज देंगे।

३- जिन केन्द्रोंसे परीक्षार्थी सम्मिलित नहीं हो पाते, ऐसे केन्द्रोंको- यदि लगातार दो वर्षोंतक वे निष्क्रिय रहेंगे तो-हमें स्थगित करनेके लिये विवश होना पडेगा। अतः जिन केन्द्रोंसे परीक्षार्थी सम्मिलित न हो सकें वहाँके केन्द्रव्यवस्थापक महानुभावोंको इस बातके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि वहाँ संस्कृत प्रचारका यह महत्त्वपूर्ण एवं पवित्रकार्य शीघ्र प्रारम्भ हो एवं अधिकसे अधिक परीक्षार्थी इन परीक्षाओंमें सम्मिलित हों। क्योंकि **संस्कृत-भाषा-प्रचार हमारी जागृतिका प्रतीक है।**

४- प्रत्येक केंद्रसे हम अधिकसे अधिक सम्पर्क बनाये रखना चाहते हैं। इसके लिये हम अपने हिन्दी, मराठी एवं गुजराती मासिकपत्र प्रत्येक केंद्रको प्रतिमास भेजा करते हैं, जिससे आवश्यक सूचनायें एवं महत्वपूर्ण वृत्त यथासमय सर्वत्र पहुँच सके। किन्तु केंद्र व्यवस्थापकोंद्वारा भी प्रतिमास हमारे पास कुछ न कुछ पत्रव्यवहार आदि द्वारा सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न हो, तो यह अधिक आनन्दकी बात होगी।

५- सन् १९५२ ई० प्रारम्भ हो रहा है। इसके साथ ही यदि हम अपने संस्कृत-प्रचार कार्यको भी अधिक गतिमान बना सके तो यह राष्ट्रकी एक बहुत बडी सेवा होगी। प्रचार कार्यमें यदि कहीं कोई बाधा उपस्थित हो तो उसे सुलझानेका यत्न करना चाहिये। ऐसा कौन भारतीय होगा जो संस्कृत भाषाका ज्ञान प्राप्त करना न चाहे। **परीक्षामन्त्री**

पुस्तक परिचय

वेदोंकी अन्तःसाक्षीका महत्त्व लेखक-श्री पण्डित मदनमोहन विद्यासागर प्रकाशक-स्वाध्याय-मण्डल 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (सूरत) मूल्य ॥) आने पृष्ठ संख्या ६५। प्रस्तुत पुस्तकके लेखक गुरुकुलके शिक्षा दीक्षा प्राप्त एक अध्ययनशील विद्वान् हैं। आपकी अन्य ४ पुस्तकें भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस पुस्तकका प्रथम संस्करण आजसे पन्द्रह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। इसकी विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की थी। यह उसीका द्वितीय संस्करण आर्य जगत्के सन्मुख प्रस्तुत है। **वेदोंमें स्वयं अपने विषयमें क्या क्या उल्लेख प्राप्त होता है**, इस बातका सूक्ष्म अध्ययन विद्वान् लेखकने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक किया है। पुस्तक अत्यन्त गवेषणापूर्ण तथा प्रत्येक आर्यके लिये पठनीय और मननीय है।

परीक्षा-केन्द्र-वृत्त

१– तलमोड (उस्मानाबाद)

प्रमाणपत्र वितरण उत्सव

स्वाध्याय मण्डल द्वारा संचालित संस्कृत परीक्षाओंके प्रमाणपत्र ता० ३०-९-५१ को प्रातः ८ बजे एक विशेष समारोहके साथ वितरित किये गये। तलमोड केन्द्रसे प्रारम्भिणी तथा प्रवेशिकामें छात्र सम्मिलित हुए थे। इस समारोहके अध्यक्ष श्री **नानारावजी वकील चिंचोळीकर** थे। श्री **कमलाकर रावजी** अध्यापक भारतविद्यालय उमर्गा और श्री **विरुपाक्षप्पाजी** अध्यापक शिर्सीके संस्कृत भाषाके गौरवके विषयमें बडे उत्साहप्रद भाषण हुए। भाषणोंके पश्चात् अध्यक्ष महोदयके करकमलोंद्वारा प्रमाणपत्र वितरित किये गये। अन्तमें केन्द्रव्यवस्थापक श्री **गुण्डो अण्णाचार्य शर्माने** केन्द्रका वार्षिक विवरण पढकर सुनाया। छात्रोंको मेवा बांटी गई तथा राष्ट्रगानके पश्चात् कार्यक्रम समाप्त किया गया।

२– कपडवणज

श्री मोढ ब्राह्मण अभ्युदयसमाजकी ओरसे कपडवणजमें हिन्दी और संस्कृतके अध्यापन मन्दिरकी स्थापना की गई है, जिसकी ओरसे हिन्दी एवं संस्कृत परीक्षाओंके वर्ग व्यवस्थित रूपसे चलाये जाते हैं। श्री **विमलकान्तजी के. त्रिवेदी** अत्यन्त योग्यतापूर्वक दोनों भाषाओंकी परीक्षाओंके लिये केंद्रव्यवस्थापकका कार्य करते हैं। उक्त संस्थाके मन्त्री पदको भी आप ही सुशोभित किये हुए हैं। जिन अध्यापक महानुभावोंका वर्ग संचालनादि कार्यके लिये सक्रिय सहयोग मिलता है उन्हें प्रशस्तिपत्रके रूपमें एक अति सुन्दर प्रमाणपत्र संस्थाकी ओरसे प्रदान किया जाता है। इस प्रकार पूर्ण व्यवस्थित रूपसे संस्थाका कार्य चल रहा है। संस्कृतकी परीक्षाओंमें भी कपडवणज केन्द्रसे सम्मिलित होनेवाले छात्रोंकी संख्या बहुत बडी रहती है।

३– कानपूर

श्री **जगदीश प्रसादजी** अवस्थी (केन्द्र व्यवस्थापक) ने स्थानीय अध्यापक वर्गोंके सहयोगसे कानपूरमें संस्कृत-भाषा-प्रचार समितिकी स्थापना की है। इस समितिमें राजकीय महाविद्यालयोंके प्राध्यापक, माध्यमिक शालाओंके अध्यापक, गुरुकुलोंके स्नातक एवं अन्य सामाजिक कार्यकर्ता सम्मिलित हैं। कानपूरके समाचारपत्रोंका भी इस कार्यके लिये पूरा सहयोग मिल रहा है। समिति स्थापित हो जानेपर वहाँका कार्य अधिक वेगसे चलेगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

४– दिल्ली

दिल्लीमें श्री जगदीशचन्द्रजी शास्त्री, श्री श्रीपालजी शास्त्री एवं प्रसिद्ध साहित्यिक श्री क्षेमचन्द्रजी सुमनके सहयोगसे संस्कृत परीक्षाओंका केन्द्र स्थापित हो गया है। दिल्लीकी अनेक सामाजिक संस्थाओंकी ओरसे भी सहयोगका आश्वासन प्राप्त हुआ है। श्री जगदीशचन्द्रजी शास्त्रीने केंद्र व्यवस्थापकका कार्यभार वहन करना स्वीकार किया। अनेक दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रोंके सम्पादकोंने इस श्रेष्ठ एवं संस्कृतिक कार्यमें **अपना पूरा सहयोग देनेका वचन दिया है।**

इन्दोरमें वेदसम्मेलन

दिनाङ्क ३१-१०-५१ से ६-११-५१ तक इन्दोरमें बडे धूमधामसे वेदसम्मेलनका उत्सव हुआ। सात दिनके इस महोत्सवमें श्री हरिहरजी लहरी एम० ए० ने 'वैदिक संस्कृति' पर प्रकाश डाला। वेदतीर्थ नेने शास्त्रीजीने एवं सर्व दर्शनतीर्थ श्री गजानन शास्त्री करमलकरजीने 'यज्ञ' विषयको विशद किया। श्रीमान् नि. छ. जमींदार साहबकी जिज्ञासासे वेद समुद्र मधुसूदनजी ओझाने 'यज्ञ रहस्य' पर भाषण दिया। डॉ० उदयभानुजीने 'वैदिक साम्यवाद' का स्वरूप स्पष्ट किया। न्यायरत्न नारायण शास्त्रीजीने वेदके कर्म, उपासना एवं ज्ञान काण्डपर प्रकाश डाला। प्रो० विप्रदासजी महोदयने 'वैदिक देवताओंके स्वरूप' की कठिनाई दिखलाई। उन्होंने कहा कि इस विषयमें आप वेदाचार्य श्री० दा० सातवळेकरजीकी दैवत संहिताओंसे कठिनाई दूर कर सकते हैं। उपाध्यक्ष प्रो० पटवर्धन सा० ने पाश्चिमात्य पद्धतिसे पुनर्जन्मके विषयमें प्रश्नात्मक भाषण दिया एवं स्व. रिसर्चस्कालर साहित्यभूषण पं. रघुनंदन शर्मा द्वारा लिखित वैदिक सम्पत्ति एवं जयपुरके समीक्षा चक्रवर्ती राज पण्डित मधुसूदनजी ओझाकी प्रशंसा की। वेदविषयक आस्था

रखनेवाले योगी स्व. अरविन्द एवं महात्मागांधीका एतद्विषयक अभिनन्दन किया गया।

अन्तमें वेद महोत्सवके अध्यक्ष धर्मभूषण, साहित्यरत्न **रणछोड दासजी** उद्धवका उपसंहारात्मक भाषण हुआ। जिसमें आपने बताया कि श्रीमंत राजकन्या सावित्री बाई साहिबाके पूर्ण सहयोगसे इस वर्ष यह वेद महोत्सवका बडा आयोजन किया गया है। वेदोत्सवकी आयोजना परमपूज्य श्री **बालस्वामीजी** महाराज (संचालक श्रीराम विश्रामधाम) ने प्रथम पूनामें प्रारम्भ की थी। यह कार्य खूब व्यापक होता जा रहा है।

श्रीमान् उद्धवजीके सुपरिश्रमसे यह उत्सव अत्यन्त सफल रहा। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वे आपके ऐसे प्रयत्न पूर्णतः सफल करें और उत्साहकी वृद्धि करें।

नवीन केन्द्र

३९- श्री. जी वेंकट नारायणाचार्य मु० गुर्तूर पो० **कोंडापुरम्** जि० वरंगल.
४०- ,, रामारावजी पटेल पंथिनी पो० **चेन्नावरम्** जि० वरंगल.
४१- ,, किसनराव श्रीरामराव दलाल अध्यापक मिडिलस्कूल पो० **माजलगांव** (बीड).
४२- ,, जयनन्दन शास्त्री काव्यतीर्थ 'हिन्दी महाविद्यालय' मुहल्ला राजघाट पो० **कनखल** जि. सहारनपुर. यू० पी०
४३- ,, मुख्याध्यापक महादेय नगर विद्यालय पो० **सिंदी** जि० वर्धा.
४४- ,, पं. ज्योतिः स्वरूपजी शास्त्री मकान नं० १३९ खुरबडा मुहल्ला **देहरादून**.
४५- ,, ,, वागीश्वरजी व्याकरणाचार्य एस. डी. कालिज **सहारनपुर**.
४६- ,, ,, हितपालजी शास्त्री गुरुकुल महाविद्यालय **ज्वालापुर** जि० सहारनपुर.
४७- ,, ,, जगदीशचन्द्रजी शास्त्री कूंचा कासगली सीताराम बाजार **दिल्ली**
४८- ,, विष्णुपंत चिन्तामणराव पाध्ये भू. पू. प्रधानाध्यापक पो० **उन्हेळ** (मध्यभारत)
४९- ,, कुंज ए. मेहता एम. ए. बी. टी. एन. एम. वाडिया हाईस्कूल **नारगोल** जि० ठाणा.
५०- ,, वल्लभभाई लल्लूभाई पटेल पो० **मुनसाड** वाया नवसारी
५१- ,, वैद्यभूषण भगवान शास्त्री खेडकर जगदंब आयुर्वेदिक फार्मसी पो० **मानवत** जि० परभणी.
५२- ,, मल्हारराव श्रीनिवासराव सुभेदार केशवराज मंदिर पो० **सेलू** N. S. Rly.
५३- ,, यज्ञेश्वर शास्त्री कस्तुरे प्रधानाध्यापक संस्कृत-पाठशाला होली पो० **नांदेड** N. S. Rly
५५- ,, धीरजलाल ज पटेल पो० **चिखोदरा** जि० खेडा.
५६- ,, रामचन्द्र दोशी 'हिन्दी विशारद' संस्कृत-नगर (दोशीवाडी) पो० **हकीमपेठ** जि० गुलबर्गा N. S. Rly
५७- ,, वी० जी० मुकुन्द काव्यतीर्थ संस्कृत शिक्षक मराठी विद्यालय **विजापूर**.
५८- ,, जी० चिन्नय्या पो० **ऊटकूर** वाया नारायणपेठ जी. आय. पी. रेल्वे.
५९- ,, वि० श्री० वाकणकर राष्ट्रीय विद्यापीठ **रतलाम** मध्यभारत.
६०- ,, अशोक शुक्ल पखालियापोल रायपुर **अहमदाबाद**.
६१- ,, इन्द्रवदन एफ. पाठक विद्यार्थी मंडल मु० कंडाच ता. कालोल पो० **देलोल** जि० पंचमहाल.

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक ९]

(लेखक— श्री. पं श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

प्रजापतिकी दुहिता

ब्रह्माका अपकृत्य (?)

हिन्दु अपने देवताओंके अपकृत्योंकी भी डींग हांकते हैं तथा सत्कृत्य हों तो उसकी भी वाह वाह करते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, विष्णुके सत्कार्योंका वर्णन ऋषियोंने जिस प्रकार किया है उसी प्रकार उनके अपकृत्योंकी निन्दा भी उन्हीं ऋषियोंने की है।

ब्रह्मा सबका दादा, सबका पितामह। इस प्रकारके ये अतिवृद्ध पितामह ' अपनी युवती पुत्रीके पीछे कामुकतासे भागते फिरे थे ' ऐसा आक्षेप पुराण लेखकोंने उनपर किया है। इस प्रकारकी कथायें कथावाचकोंको मिल जानेपर वे उसका विचित्र वर्णन किये बिना कैसे रहेंगे? क्योंकि उनका तो पेट ही ऐसी कथाओंपर पलता है। यही कथायें आगे चलकर संस्कृतिकी मार्गदर्शिका बन जाती हैं !

किन्तु क्या सचमुच ब्रह्माने ऐसे अपकृत्य किये होंगे? ब्रह्मलोककी प्राप्तिके लिये कितना तप करना पडता है ! उस ब्रह्मलोकका यह मुख्य देव ही इस प्रकार बुढापेमें अपनी पुत्रीपर कुदृष्टि रखनेवाला हो, तो फिर वहाँ अन्य लोगोंकी क्या स्थिति होगी? राम जाने। इस प्रकारकी यह गडबड यदि सचमुच ही ब्रह्माके घर हो तो भारतीय संस्कृतिकी विरुदावलि गानेसे क्या लाभ? किन्तु हमें केवल इतनेसे ही ऐसे अनुमानोंतक न पहुँच जाना चाहिये। क्योंकि हमने शंबूक तथा जरत्कारुकी कथाओंपर पिछले ही लेखमें प्रकाश डाला है तथा यह देखा है कि उनमें बहुत बडी राष्ट्रीय आपत्तिका प्रतिकार करनेका उत्तम प्रयत्न किया गया है। वहुत् ही ब्रह्माकी कथामें भी रहस्य होना सम्भव है। अतः इस कथाके मूलका पर्यालोचन प्रथम कर लेना इष्ट है।

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यधावत्।
दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये।
तां रिश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्।
तं देवा अपश्यन् ॥
" अकृतं वै प्रजापतिः करोति " इति।
ते तमैच्छन् य एनमारिष्यति।
तेषां या घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरन्।
ताः संभृता एष देवोऽभवत्।
तं देवा अब्रुवन्
" अयं वै प्रजापति अकृतं अकः।
इमं विध्य " इति स तथेत्यब्रवीत्।
तं अभ्यायत्य अविध्यत्।
स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्। ऐ० ब्रा० ३।३३

प्रजापति अपनी पुत्रीकी ओर दौडा। कइयोंके मतसे वह पुत्री उषा अथवा द्यु होनी चाहिये। उस लाल पुत्री-को देखकर वह उसके पीछे दौडा। देवताओंने यह देखा तब उन्होंने कहा— ' इस समय प्रजापतिको जो नहीं करना चाहिये वह वे कर रहे हैं '। अतः इस बातके प्रतिकारके लिये देवोंने अपनेमें किसीको ढूंढा। उनमें जो खूब सशक्त थे उन्हें एकत्रित करके उनका एक संघ बनाया गया। देवोंने संघसे कहा कि ' यह प्रजापति अकर्तव्य कर रहा है; अतः इसे नष्ट कर देना चाहिये '। संघने कहा कि ठीक है और उसने प्रजापतिपर बाण फेंककर उन्हें घायल कर दिया। इस प्रकार प्रजापति घायल होकर जमीनपर गिर गया।

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें एवं शतपथ ब्राह्मणमें आयी हुई है। इस कथासे प्रजापतिपर कामुक होकर पुत्रीकी ओर दौडनेका आक्षेप दूर हो जाता है। यदि ' उषा ' को पुत्री मान लिया जाय तो उसके पीछे दौडनेवाला सूर्य ही है। तब अश्लीलता अथवा अपकृत्यका कोई सम्बन्ध नहीं, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

किन्तु यदि सूर्य एवं उषाकी ही यह कथा हो तो अगले वृत्तान्तकी किस प्रकार संगति लगानी चाहिये? यह प्रश्न शेष रहता ही है। और भी-

१- प्रजापति अपनी पुत्रीके पीछे दौडा।

२- उसके इस अपकृत्यको देवोंने देखा और कहा कि 'जो नहीं करना चाहिये वह यह कर रहा है,'

३- इसका वध करनेके लिये उन्होंने अपनेमेंके सशक्त व्यक्तियोंका एक संघ बनाया तथा उस संघने प्रजापतिको घायल किया।

यदि प्रजापतिकी पुत्री उषा होवे तथा प्रजापति सूर्य हो तो अगले वर्णनका मेल नहीं बैठता। अतः इस कथाको सुलझानेके लिये हमें और अधिक खोज करनी चाहिये। यह खोज हम वैदिक साहित्यमें करेंगे। वेदोंके मन्त्रोंमें प्रजापतिकी पुत्रीके सम्बन्धमें अगले मन्त्र देखनेयोग्य हैं।

प्रजापतिकी पुत्रियाँ

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना सगच्छा उपमा स शिक्षात् चारु वदानि पितरः संगतेषु। अथर्व. ७।१२।१

सभा और समिति ये दो प्रजापतिकी पुत्रियां हैं। सभाका अर्थ ग्रामसभा तथा समितिका अर्थ राष्ट्रीयसभा अथवा प्रातिनिधिक सभा। ये दोनों सभायें राजाको (संविदाने) उत्तम जानकारी या सम्मति दिया करती हैं। इन सभाओंके सभासद राजाके (पितरः) पितर अर्थात् पितृवत् पूज्य हैं। सभासदोंके साथ राजा (मैं) विचार विनिमय करेगा उन सभासदोंको चाहिये कि वे राजाको (मुझे) (मा उपशिक्षात्) उचित सम्मति दें। हे पितृस्थानीय सभासदो! (मैं) राजा इन सभाओंमें जो उत्तम होगा वही बोलूंगा।

यह राजाका वक्तव्य है। ग्रामपंचायत एवं राष्ट्रसभा ये प्रजापतिकी-राजाकी दुहिता हैं। राजाके लिये पुत्रिवत् हैं। क्योंकि इनका निर्माण राजाके आज्ञापत्रकसे हुआ करता है। ये सभायें 'राजाकी पुत्रिके समान हैं' इस कथनमें एक श्लेष है; क्योंकि ये सभायें राजाकी पुत्रियोंके समान होनेके कारण राजाको उनका संरक्षण करना चाहिये; किन्तु राजा इससे अधिक अपना कोई अधिकार उनपर नहीं जता सकता। (दुहिता दूरे हिता) पुत्री दूर रहनेपर हितकर रहती है। पिताको पुत्रीका एक मर्यादातक संरक्षण मात्र करना चाहिये उसपर अधिकार जतानेका अधिकार उसे नहीं है।

राजसभाके सभासदोंका अधिकार

राजसभाके सभासद राजाके-इस प्रजापतिके-पितर हैं। यदि जनता द्वारा नियुक्त किया गया प्रजापति होगा तो लोग उसका चुनाव करके उसे उत्पन्न करनेके कारण उसके (राजाके) पितर हुए। ये सदस्य राजाको परामर्श आदि देनेके कारण उसके शिक्षक भी हुए। उपर्युक्त मन्त्रद्वारा यह सिद्ध हुआ कि प्रजापतिका अर्थ प्रजाका पालन करनेवाला राजा है। ग्रामसभा एवं राष्ट्रसमिति ये दो उसकी पुत्रियाँ हैं। इन समितियोंके सभासद चुनावद्वारा राजाका निर्माण करनेवाले होनेके कारण उसके पितर हुए एवं उचित परामर्श देनेके कारण ये ही सदस्य राजाके शिक्षक भी हुए। यह पारस्परिक सम्बन्ध मनन करनेयोग्य है।

वेद मन्त्रोंके अर्थपर विचार करनेपर यह परिलक्षित होता है कि इस कथाका आशय राजकीय क्षेत्रकी ओर जा रहा है तथा अपनी पुत्री पर कुदृष्टि रखकर बलात्कार विषयक जो आक्षेप प्रजापतिपर किया जा रहा था वह दूर होता हुआ दिखाई दे रहा है। अतः पाठकोंको चाहिये कि वे इस कथापर अब राजकीय दृष्टिकोणसे विचार करें। इस कथाका अधिक स्पष्टीकरण करनेके लिये एक ऋग्वेदके मन्त्रपर विचार करेंगे।—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिंचन्। स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥

ऋ० १०-६१-७

इस मंत्रमें चार महत्वके विचार हैं, जो इस प्रकार हैं--

१- प्रजापतिने अपनी दुहितापर आक्रमण किया।

२– तब मातृभूमिके साथ (मातृभूमिकी जनताके साथ) इसका संघर्ष हुआ, उसमें प्रजापतिके वीर्यका पतन हुआ।
३– तब स्वाध्यायशील ज्ञानी लोगोंने नवीन घोषणा की एवं
४– नियमोंका पालन करनेवाला दूसरा राष्ट्रपति जन लोगोंने बनाया।

यह वर्णन स्पष्टरूपसे राजा एवं प्रजाके संघर्षका है। (व्रतपां वास्तोष्पतिं निरतक्षन्) नियमपूर्वक आचरण करनेवाले दूसरे नवीन प्रजापालक राजाको इसने चुना, अर्थात् पहला राजा नियमपूर्वक आचरण करनेवाला न था, वह सभा एवं समितिपर आक्रमण करता था, उनकी आज्ञानुसार न बर्तकर अपनी आज्ञानुसार सभा एवं समितियाँ चलें, इस प्रकारका दुराग्रह करनेवाला था। यही प्रजापतिका अपनी पुत्रीपर आक्रमण था। प्रजापति (अकृतं वै प्रजापतिः करोति) वैसा आचरण कर रहा है जैसा कि आजतक किसी भी राजाने नहीं किया। इसका प्रतिकार करनेके लिये प्रजाने (या घोरतमाः तन्वः आसन् ता एकधा समभरन्) अपनेमेंके सशक्त व्यक्तियोंका एक संघ बनाया तथा उससे कहा कि यह राजा जो न करना चाहिये वह कर रहा है। अतः (इमं विध्य) इसे नष्ट कर। इस प्रकार उस संघने उस प्रजापतिको घायल किया और इधर (व्रतपां वास्तोष्पतिं निरतक्षन्) प्रजासमितिके नियमानुकूल चलनेवाले दूसरे राष्ट्रपतिका जनताने निर्माण किया।

इस वर्णनका पर्यालोचन करनेके बाद यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि यह कथा अश्लील तो है ही नहीं, अपितु इससे वैदिक राज्यशासनके एक महान् एवं महत्त्व पूर्ण सिद्धान्तकी निष्पत्ति होती है और वह इस प्रकार है–

१– प्रजापति अर्थात् प्रजाका पालन करनेवाला राजा।
२– इसे सभा एवं समिति नामक दो लोक सभायें परामर्श देनेवाली हुआ करती थीं।
३– राजाने इनका निर्माण करना चाहिये एवं इनके परामर्शानुसार राज्य करना चाहिये। इन सभाओंके सभासदोंका अधिकार पिता एवं गुरुके समान है तथा इसी प्रकार राजाको इन्हें मान्यता देनी चाहिये।
४– यदि कोई राजा इनके प्रस्ताव-परामर्शोंकी अवहेलना करे तो–
५– लोक सभाके सदस्य ऐसे राजाका वध भी कर देते थे और
६– नवीन राजाका निर्माण करते थे तथा पहले राजाको पदच्युत किया करते थे।

लोक सभा एवं उस सभाके सदस्योंका यह अधिकार था। प्रजापतिकी दुहिता 'उषा' न होकर वह 'लोक-सभा' एवं 'लोक समिति' है तथा इस लोक समितिके सदस्योंको यह अधिकार था कि वे पहले अध्यक्षको पदच्युत करके उसके स्थानपर नये (व्रतपां वास्तोष्पतिं) नियमोंका उचित रूपसे पालन करनेवाले राष्ट्रपतिकी नियुक्ति करें।

इसी पद्धतिके अनुसार नया राष्ट्रपति निर्माण किया, इस प्रकार उपर्युक्त ऋग्वेदके मंत्रमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है। (क्ष्मया संजग्मानः) पहला राजा मातृभूमिसे अर्थात् जनतासे संघर्ष करने लगा। इस संघर्षमें (रेतः निषिंचन्) उस राजाका सारा वीर्य नष्ट हो गया। वह निर्वीर्य हो गया। जनताके क्रोधके आगे राजा टिक भी कैसे सकता है? अतः जनताके क्रोधने राजाका बलि ले लिया। संगठित राष्ट्रने राजाका नाश किया एवं उसके स्थानपर नवीन राजाको स्थापित किया।

अब इस कथाकी उलझन दूर होकर वह स्पष्टरूपसे हमारे सम्मुख आगई। प्रजापतिकी दुहिता न तो उषा है, न द्यु,है तथा श्रीमद्भागवतकार जो कहते हैं तदनुसार सरस्वती किंवा वाणी भी नहीं है।

> वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः।
> अकामां चकमे क्षत्त· सकाम इति न श्रुतम्॥
> श्रीमद्भागवत् ३-१२-२८

'स्वयम्भू ब्रह्माका अपनी युवती पुत्रीपर मन आकर्षित हुआ। उसमें काम उत्पन्न नहीं हुआ था तथापि उसके विषयमें यह कामुक हुआ' इत्यादि कथा भागवतकार लिखते हैं। ये सब आधुनिक कथायें काल्पनिक हैं तथा निष्कारण ब्रह्माको निन्दित करनेवाली हैं।

लोकशाहीकी प्रजापति संस्था

'प्रजापति' नामक एक राज्यशासन संस्था वैदिक कालमें थी। उस राज्यशासनमें प्रजापतिके स्थानपर एक उत्तम शासक चुनकर दिया जाता था। यदि कभी इस प्रकार निर्वाचित किया गया प्रजापति किन्हीं कारणोंसे स्वार्थी बन जाय एवं लोकसभा तथा राष्ट्रसमितिके आदेश ताकपर रखकर अपनी मर्जीके अनुसार राज्य करने लग जाय तो उसकी इस बातका राज्यके अग्रगण्य कार्यकर्ता विरोध करते थे। यही बात ब्रह्माके साथ हुई। जनताने निश्चय किया कि यह प्रजापति जो नहीं करना चाहिये वह कर रहा है; अतः इसका प्रतिकार होना चाहिये। तब उन्होंने अपनेमेंसे सशक्त लोगोंका संगठन करके प्रजापतिका वध कराया। दूसरे प्रजापतिका चुनाव किया गया और उससे यह प्रतिज्ञा करा ली कि मैं नियमानुसार बरतूंगा। इस प्रकार प्रजापतिसंस्थाके अध्यक्षपदपर इस दूसरे व्यक्तिको स्थानापन्न किया।

वैदिककालकी यह कथा विशुद्ध राजकीय स्वरूपकी थी। तत्कालीन राज्यशासन लोकतांत्रिक या जानराज्य था। अध्यक्षको पदच्युत करनेका अधिकार जनताके नेता इस प्रकारसे उपयोगमें लाते थे। अर्थात् यह उस समयकी प्रजापति-संस्थाकी जीवित राजनीतिज्ञताका ज्वलन्त उदाहरण है। आज हम स्वतन्त्रताकी सांस ले रहे हैं। हमारे राज्य-विधानका अभी निर्माण ही हो रहा है। इस घटनाके अनुसार चुनाव होना है। ऐसे अवसरपर इस कथामें निहित तत्त्व आज भी हमारे लिये मार्गदर्शक बन सकते हैं। हमें इसपर विचार करना चाहिये तथा यदि इसमें लेने योग्य कुछ हो तो उसे ग्रहण करना चाहिये।

विशुद्ध राजकीय इतिहासका आगे जाकर अश्लील कथाके रूपमें कैसा विपर्यास हुआ, यह बात यहाँ देखने जैसी है। इस अश्लील कथा भागमें भी मूल कथाके तत्त्व अंशतः अवशिष्ट हैं ही। 'जो न करना चाहिये वह यह कर रहा है, इसका वध किया जाय' इस प्रकारके उल्लेख इस विकृत कथामें भी विद्यमान हैं।

कथाओंके विकृत होनेकी भी कोई मर्यादा होती है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ उस मर्यादाका ध्यान ही नहीं रखा गया है। सबसे बडे आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस प्रकारकी विकृत कथाओंको ही हमारी संस्कृतिका गौरवमय आधार माना जाता है। जब कि इस प्रकारकी कथाओंका विकृतीकरण तब हुआ है जब जनताको खैणत्व-के अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था तथा वैदिक कालके ऋषिगण जिस प्रकारके जानराज्यमें विचरते थे वह वातावरण ही नष्टप्राय हो चुका था।

अतएव हमारी विशुद्ध संस्कृति वह है जिसका अस्तित्व वैदिककालमें था। वही संस्कृति हमें बतलाती है कि राजाका निर्माण करना प्रजाके अधिकारकी बात है और यह तत्त्व आज भी हमारे लिये सर्वथा उपादेय है।

अनुवादक- महेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर

ब्रह्म–साक्षात्कार

लेखांक ३ । अध्याय ४

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ वा० य० ३२।३ ॥ (उसका बनानेवाला आदि आदि कोई नहीं)

लेखक— श्री० गणपतराव बा० गोरे, ३७३ मंगलवार 'बी', कोल्हापूर

(गतांकसे आगे)

१ ली शंका--पाश्चात्य विज्ञानी द्युलोकमें तीन कोटीके लगभग सूर्योंकी उपस्थिति बताते हैं और वेद कहता है कि द्युलोकमें और भूलोकमें एक सूर्यके समान न कोई आज तक उत्पन्न हुआ है और न भविष्यमें होगा। इन दोनोंमें प्रामाणिक कौन ? वेद वा पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्री ?

समाधान- दोनों ! कारण सूर्य सूर्य सब एक हैं। तीनों कोटी सूर्य अपने अपने स्थानपर मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं। यह तो ऐसी बात है जैसे एक कहे कि ईश्वरकी सृष्टि में एक मनुष्य ही सबसे अधिक ज्ञानवान प्राणी है, और दूसरा आक्षेप करे कि सृष्टिमें तो असंख्य मनुष्य बसते हैं। जिस प्रकार जातिकी अपेक्षासे सब मनुष्य एक जातिके हैं उसी प्रकार तीन कोटि सूर्य भी एक जातिके हैं, कारण **यथापूर्वमकल्पयत्** ॥ ऋ १ । १९० । ३ ॥

मंत्र सिद्ध करता है कि ईश्वर वा उपास्य देव एक उत्पन्न प्रत्यक्ष दीखनेमें आनेवाला पदार्थ है, अदृश्य निराकार नहीं।

२ री शंका-उपरोक्त दोनों मंत्र परमेश्वर को त्रिकालदर्शी तथा भविष्यवक्ता सिद्ध कर रहे हैं, परंतु ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश स० ७ में लिखते हैं कि 'ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है' इत्यादि। अब इनमें सत्य कथन किसका माना जाय ?

समाधान--सत्य कथन वेदका है, ऋषिने जो कुछ लिखा है वह ईश्वरको निराकार अजन्मा मानकर, परंतु वेद ईश्वरको साकार स्वयम्भूः = स्वशक्ति से उत्पन्न और स्वसामर्थ्यसे विद्यमान ' मानता है। ऋ ७ । ३२ । २३ में ईश्वर मनुष्यको अपनी स्तुति उपासना करना सिखा रहे हैं,

२

अतः इस मंत्रमें जो त्रिकालज्ञता 'ईश्वरमें दीख रही है वह जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे है' जैसा कि ऋषिने भी माना है-और यह यथोचित है।

३ री शंका--ऋ ७ । ३२ । २३ निस्संदेह साकार सूर्यको ही उपास्य देव सिद्ध कर रहा है, कारण (अश्वाः अन्त) किरणोंके बीच रहनेवाला तथा (गव्यः अन्तः) गतिमान् पृथ्व्यादि ग्रहों उनके उपग्रहों वा चन्द्रमाओं, तथा धूमकेतुओंके बीच रहनेवाला- इनसे घिरा हुआ, और साथ ही प्राणियोंकी ज्ञानकर्मेंद्रियोंमें बसा हुआ, सूर्य वा अग्नितत्त्व ही है- निराकार परमात्मा नहीं। पाठकोंको सत्यकी प्राप्ति सुलभ हो—वे स्वयं तुलना करके सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग कर सकें, इसलिए इस मंत्रके जो अर्थ निराकारवादियोंने किए हैं वे भी बताइए।

समाधान— संवत १९८४ में **वेदामृत** का द्वितीय संस्करण श्री स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ द्वारा संपादित और श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहोर द्वारा प्रकाशित हुआ है। उसके पृ ३२-३३ पर उक्त मंत्र के निम्न अर्थ हैं—

"हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् प्रभो ! (दिव्यः) द्युलोकमें उत्पन्न और (पार्थिवः) पृथिवीपर उत्पन्न (त्वावान् अन्यः) तेरे सदृश कोई दूसरा (न जातः) नहीं हुआ और (न जनिष्यते) न होगा। (अश्वायन्तः) घोडोंकी (वाजिनः) बल और अन्नकी, (गव्यन्त) गौवोंकी इच्छा करनेवाले हम (त्वा हवामहे) तेरी ही उपासना करते हैं ॥ २३ ॥

लेखकका स्पष्टीकरण—' त्वावान् अन्य. न जातः न जनिष्यते ' का सीधा सादा अर्थ है " तेरे सदृश कोई

दूसरा नहीं उत्पन्न हुआ और न उत्पन्न होगा।" यहां वेदका 'उत्पन्न' शब्द परमात्माकी 'काल्पित निराकारता' पर कुठाराघात करता था, अत. इसे निकालकर निराकारवादी स्वामीजीने अपने वेदविरोधी सिद्धान्तकी रक्षा कर ली। इसी प्रकार अश्वायन्तः वाजिनः और गव्यन्तः का आरोप मनुष्योंपर करके वैदिक सूर्योपासनासे जान छुडा ली। यह है इन निराकारवादियोंका वेदार्थ करनेका नमूना! और देखिए—

समाधान १ चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेवजी शर्माका यजुर्वेदमें अर्थ—

"हे (इन्द्र) परमेश्वर! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्य) और कोई (दिव्यः न) द्यौलकमें सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ नहीं है। और (न पार्थिव त्वावान् अन्यः) पृथिवीके पदार्थोंमें भी तेरे जैसा कोई और नहीं है। (न जातः) न अभीतक पैदा हुआ है और (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (इन्द्र) साक्षात् दर्शनीय परमेश्वर! हम (वाजिनः) ज्ञानवान् अन्नवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (अश्वायन्त.) अश्व और (गव्यन्तः) गौओंके समान कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी विशेष कामना करते हुए या उनपर वश करते हुए (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं॥ वा० य० २७।३६॥"

लेखकका स्पष्टीकरण- १. ऋ १।१६४।४६ के अनुसार 'इन्द्र' साकार सूर्यका नाम है और इसे प० जीने दर्शनीय भी माना है और परमेश्वर भी! निराकारवाद पर कुठाराघात।

२. सूर्यको 'दर्शनीय परमेश्वर' मानकर मंत्रका ऐसा अर्थ करना कि 'तेरे जैसा तेजस्वी पदार्थ पृथिवी और द्युलोक में और कोई नहीं है' सो भी ठीक। परंतु ऐसा अर्थ करना कि 'हम ऐश्वर्यवान् गौओं और घोडोंके स्वामी बने तो ही तेरी स्तुति करते हैं' अन्यथा नहीं करते वेदपर अन्याय और अनर्थ ही है। 'हे मघवन् इन्द्र! अश्वायन्तः वाजिन' गव्यन्तः त्वा हवामहे' का सीधा सादा अर्थ तो वहीहै जो ऋ. ७।३२।२३के अर्थमें ऊपर दर्शाया गया है। अश्वायन्तः आदि तीनों पद इन्द्रके विशेषण हैं मनुष्योंके नहीं।

निराकारवादी किस कुटिलतासे अपने सिद्धान्तका समर्थन करते हैं, सो इन दो उद्धरणोंसे स्पष्ट हो रहा है। अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

इन्द्र वा सूर्य का प्रतिमानम् बराबरी करनेवाला प्रतिष्ठिः=स्थापना करने वा स्थिर रखनेवाला कोई नहीं!

ऋषि बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। देवता इन्द्रः।
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे
महिमा पृथिव्याः। नास्य शत्रुर्न प्रतिमा-
नमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः॥
ऋ. ६।१८।१२

अर्थ श्री स्वा० वेदानन्दजीका वेदामृत पृ० २८ से— (तुवि-द्यु-म्नस्य) अत्यत तेजस्वी (स्थविरस्य) स्थिर और (घृष्वेः) दुष्टताको पीसनेवाले ईश्वरकी (महिमा) महत्ता (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवीकी मर्यादाओंसे भी (ररप्शे) परे फैली है। (न अस्य शत्रुः) इस ईश्वरका कोई शत्रु नहीं (न अस्य प्रतिमानं) न इसकी कोई प्रतिमा है, न इनके समान कोई है। (पुरुमायस्य) अनन्त ज्ञानवाले अनन्त शक्तिवाले (सह्यो.) तथा सहन शक्तिवाले बलवान ईश्वरका और कोई (प्रतिष्ठिः) आश्रय नहीं है। अर्थात् वह सर्वाधार होता हुआ अपने लिए दूसरे आश्रयकी अपेक्षा नहीं करता॥ १२॥

लेखक की समीक्षा- मंत्रकी देवता इन्द्र = सूर्य प्रत्यक्ष ही अत्यंत तेजस्वी है सो ठीक। फिर भला अर्थको 'निराकार' पर कैसे घटाया जा सकता है?

जिस ईश्वरका कोई शत्रु नहीं वह साकार सूर्य ही है, निराकार परमात्मा नहीं! सूर्यकी प्रशंसा तो घोर नास्तिक भी करते हैं।

'न अस्य प्रतिमानं अस्ति' यह वाक्य भी साकार सूर्य पर घटता है। उसीका प्रतितोल कोई नहीं है, वही सब ग्रहोंको अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा अपनी प्रदक्षिणा करवा रहा है। अ० ९।९।२० द्वा सुपर्णा० मंत्रका जो अर्थ आर्यसमाज में प्रचलित है, उसके अनुसार तो प्रकृति निराकार परमात्माकी आश्रयदातृ = प्रतिष्ठिः सिद्ध होती है, बराबरी की तो बात ही क्या?

न अस्य प्रतिष्ठिः का अर्थ है उस साकार सूर्य की स्थापना करनेवाला, उसे अपने स्थानपर स्थिर रखनेवाला कोई नहीं है, कारण वह 'स्वयम्भू'=स्वसत्तासे उत्पन्न और स्वसामर्थ्यसे स्थिर है, स्थित है। इससे ' द्वा सुपर्णा ' का अर्थ अत्यंत विसंगत है।

'पुरुमायः' का अर्थ 'अनेक मायाओंसे भरपूर अनेक राजनीतियों, छल-कपटोंसे युक्त ' ऐसा है। सूर्य जहां शिष्टोंसे सुनीति वर्तता है वहां दुष्टोंपर वामनीति भी चलाता है-

मायाभि मायिन. अप अधम ॥

ऋ १।५१।५ ॥ देवता इन्द्रः ॥

अर्थ-कपटी शत्रुओंको कपटोंसे नीचे गिराओ ॥ ५ ॥

इस वेदादेशपर हिंदुओंसे अधिक मुसलमान आचरण करते हैं। यह 'पुरुमायः' शब्द ४वार वेदमें इन्द्र का विशेषण होकर आया है, निराकार ईश्वरका एक वार भी नहीं।

'तुवि- द्युम्नस्य' 'स्थविरस्य,' 'घृष्वेः' 'ररप्शे' शब्दोंके अर्थ मंत्रके लेखक द्वारा किए हुए अर्थमें आगे खुलेंगे.

'सह' का अर्थ 'सहन करनेवाला' वेदमें सदा परमात्मा पर ही घटाया गया है, ऐसी बात नही, इस मन्त्रमें 'न अस्य पुरुमायस्य सह्योः' ऐसा वाक्य समझना उचित है। अर्थ 'उस मायावी की मायाओंको सहन करनेवाला कोई नहीं.' यही अर्थ मंत्रमें आए अन्य वाक्योंसे भी सुसंगत हो सकता है।

यह 'सह' पद अनेकों वार साकार इन्द्र वा सूर्यका ही विशेषण बनकर वेदमें आया है, निराकार परमात्माका एक वार भी नही। परंतु स्वामीजीको जो येन केन प्रकारेण निराकरवाद वेदसे सिद्ध करना था सो मंत्रके देवताका दुर्लक्ष करके 'सह्यो' पदको भी निराकार का वाचक ठहरा दिया। वैदिकधर्मी सावधान ! यह है वह वेदविरुद्ध कारस्थान जिसका आश्रय लेकर गत ७५ वर्षोंसे निराकार परमात्माके कल्पित अस्तित्वको वेद से सिद्ध करनेकी चेष्टा की जा रही है। आर्य समाज वेदोंमें ऋषि--देवता छापता है, परंतु मंत्रोंका अर्थ करते समय इनका दुर्लक्ष इसलिए करता है कि उसे निराकारवादकी पोल खुल जानेका डर लगा रहता है। छापना बंद करे तो वही कारण बताना पड़ेगा, जो वह बताना नहीं चाहता। इस समस्यासे छुटकारा पानेका एकमेव उपाय यही समाजियोंको सूझा है कि "देवताका दुर्लक्ष करके सबका अर्थ 'निराकार परमात्मा' ही करते जाओ!" और देखिए—

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाबने वेदामृत द्वितीय संस्करणके आरंभमें आर्यसमाजके १० नियम प्रकाशित कराये हैं, और इनमें तीसरे नियमको विशेष मोटे अक्षरोंमें छपवाया है— यथा,

वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है। वेदका पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।"

नियम वैदिक धर्मियोंके लिए शिरोधार्य है, परंतु दुःख है कि वेदकी ' सब सत्य विद्या ' अबतक वेदवाणीमें ही बंद पडी है, और भाष्यकार इन्हें भाषाओंमें यथावत् उतार न सके। यही नहीं, वे तो वेदविरुद्ध भाषान्तर करनेपर कटिबद्ध हो चुके हैं और साथ ही संसार को वैदिक धर्मी बनानेके घोष भी लगाते रहते हैं। इन्होंने वेद विरुद्ध अर्थोंका पढना पढाना और सुनना सुनाना ही परम धर्म मान लिया है क्या? क्या आजका वैज्ञानिक और ससार इन विज्ञान शून्य अर्थोंको स्वीकार करेगा भी!

देवता अनुसार अर्थ लगानेसे ही ' वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ ऋ १।१६४।४६ के अनुसार ' इन्द्र ' सूर्यका नाम है,अतः जहां जहां मंत्रका देवता इन्द्र हो वहां वहा 'मंत्रमें साकार सूर्य का वर्णन है, ऐसा मानकर ही अर्थ लगाना वेद सम्मत अर्थ होगा, अन्यथा वेदविरुद्ध !

१ ली शंका- ऋ ६।१८।१२ का देवता इन्द्र है और इसमें जो शब्द इन्द्रके विशेषण आदि होकर आए हैं, सिद्ध कीजिए कि वे शब्द अन्य वेदमंत्रोंमें भी इन्द्र वा सूर्य के लिए ही प्रयुक्त किए गए हैं।

समाधान- उक्त मंत्रमें द्युम्न, स्थविर घृष्व, विरप्शिन्. अशत्रु, अप्रतिमानं, अप्रतिष्ठिः पुरुमायः, सह ये ९ विशेषण इन्द्रके आए हैं, ये सब अन्यत्र भी वेदमें इन्द्रके लिए ही प्रयुक्त हुए हैं, देखिए—

१ द्युमत्तमं। ऋ ६।४४।९ ॥ २ स्थविरः ऋ. ३ ४६।१।, ४।१८।१०, आदि ६ स्थान ॥

३ 'घृष्' धातुके ३७ शब्द हैं, यथा घृषत्, घृषन्मना, घृष्माणः, घृषित, घृष्णः, घृष्णुः, घृष्णुया, घृष्वोजाः ॥

देखो पं सातलेकर द्वारा संपादित दैवतसंहिता ॥
४ विरप्शिन् ऋ ३ । ३६ । ४ ॥ ५ अशत्रुः ऋ १ । १०२ । ८ । अजात शत्रुः ऋ० ५ । ३४ । १ ॥

६ अप्रतिः ऋ ५ । ३२ । ३ ॥ प्रतिमानं न अस्ति ऋ. ४। १८। ४॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति वा. य. ३२।३॥
७ प्रतिष्ठितः आपटेके कोशमें विष्णु वा सूर्यका नाम है ।
८ पुरुमायः ऋ ३। ५१ । ४ ॥ ९ सहः ऋ १।५७ । २ ॥ सहमानः ऋ २ । २१ । २ आदि ॥

७ को छोडकर शेष सभी मंत्रोंकी देवता इन्द्र ही हैं। जो विशेषण एक मंत्रमें किसी देवताके बताए गए हैं, वही अन्यत्र भी दिखानेकी सावधानी जो वेदमें पायी जाती है, उससे सिद्ध होता है कि **वेदकी बनावट अत्यंत बुद्धिमान सूर्य पुरुष वा परमेश्वर से ही हुई है।**

वेदसे सब सत्य विद्याओंकी प्राप्ति = सारा भौतिक आदि ज्ञान विज्ञान भी तभी प्राप्त होगा जब इन्द्र, वायु, अग्न्यादि पदार्थोंके वेदाभीष्ट अर्थ ही किए जाएंगे। सबके **अर्थ निराकार परमात्मा कर देनेसे हम पदार्थ विज्ञान को कदापि पा न सकेंगे।**

२ री शंका-आपके मतमें ऋ. ६।१८।१२ का वेद सम्मतार्थ क्या होना चाहिए सो बताइए?

समाधान— ब्रह्म साक्षात्कार करवाने में जो अत्यंत निर्णायक वेद मत्र हैं, उनमें से एक मंत्र यह है। वेद अपौरुषेय हैं, ईश्वरकृत हैं, परमात्माने प्रकाशित किए हैं, ऐसा वैदिक धर्मी मानते हैं परंतु वह परमात्मा साकार है वा निराकार इसका निर्णय इस मन्त्रके ऋषि—देवता करते हैं, और उसी निर्णय की पुष्टी मंत्रका अर्थ भी करता है। किसी मंत्रका अर्थ वेदसम्मत है वा नहीं, इसके लिए देखना चाहिए कि वह अर्थ निम्न चार कसौटियोंपर पूरा उतरता है वा नहीं—

वेद--सम्मति की कसौटियां

१ मंत्रके ऋषि-देवता जिस विषयको बतावें, मंत्रका अर्थ भी उसी विषयका पोषक हो।

२ मंत्रके देवताके गुणबोधक पदोंकी पुष्टि उसी देवताके अन्य मंत्रोंमें लगभग उन्हीं अर्थोंमें आनेसे होती हो (देखो १ली शंका और उसका समाधान, विस्तार भयसे अर्थ यहां नहीं बताए गए हैं)

३. मंत्रमें जितने वाक्य जिस क्रमसे आए हों, भाषान्तर भी उतने ही वाक्योंमें उसी क्रमसे उतने ही शब्दोंमें (अधिक व्यर्थ शब्द अपनी ओरसे न मिलाते हुए) संभवतः किया गया हो। 'संभवतः' इसलिए लिखा कि काव्यकी पूर्णताके लिए वेदमें शब्द आगे पीछे भी डाले गये हैं।

४. मत्रका **वेद-सम्मत अर्थ सदा एक ही होता है और वह देवता अनुसार है।** परोपकारका लक्ष करके वह अर्थ राजा, योगी आदि पर घटाकर उसको उपयोगी बनाना बुरा नहीं। अर्थात् मंत्रका विनियोग **सब सत्य मार्गों से भिन्न भिन्न प्रकारसे हो सकता है, परंतु इन्हें कोई वेद-सम्मत अर्थ समझनेकी भूल न करे।**

ऋषि—देवताका उपदेश

ऋग्वेद ६ । १८ । १२ का ऋषि 'बार्हस्पत्यो भरद्वाजः' और देवता 'इन्द्रः' है। ऋ २।३०।४ में 'बृहस्पति' इन्द्रका नाम है और ऋ १।१६४।४६ में 'इन्द्र' सूर्यका नाम लिखा है। 'भरद्वाज' सात ऋषियों वा सूर्य किरणों * में से एकका

---

* **तदासत ऋषयः सप्त साकं** (अ० १०।८।९)

अर्थ— (तत्) वहां = ज्येष्ठ ब्रह्म वा सूर्य में (सप्त ऋषयः) सात रंगोंकी किरणें (साकं) सदा एकत्र होकर (आसत्) रहती हैं ॥ ९ ॥ सूर्य में ही नहीं प्रत्येक शरीर में सात रंगकी किरणें अपना अपना कार्य करती रहती हैं, यथा—

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ॥ (वा० य० ३४।५५)

अर्थ— (सप्त ऋषयः) सात प्रकारके किरण (शरीरे) शरीर में (प्रति) सूर्यसे उलट कर (हिताः) हितकारी बने रहते हैं। (सप्त) ये भिन्न भिन्न प्रभाववाले सात रंगके किरण (अ--प्रमादं) भूल न करते हुए (सदं) शरीर रूपीघरकी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं ॥ ५५ ॥ यह मंत्र सूर्य-किरण चिकित्साकी ओर संकेत कर रहा है, परंतु लोगोंने आंख, कान, जिह्वा, नाक, त्वचा, बुद्धि और मन को सात ऋषि माना है-- जो सभी '**प्रमादी**' हैं। शास्त्रों में इनके नाम ऐसे आये हैं--

गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि ॥ शतपथ ब्रा० ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलह, क्रतु,

नाम है। अग्नि(भाषामें अगिन्,अगन,आग) अगिया,आग्या वा आग 'अगिन' चंडोल पक्षि SKY-LARK का नाम है, जो उड़ते उड़ते सदा मधुर स्वरसे गाता रहता है। P. B. Shelley ने चंडोल पक्षिपर एक अच्छी कविता लिखी है। आदि चंडोल कौन ? वह जिसने साम वेद गाया। सूर्यात् साम वेदः ॥ मनु १।२३॥ अग्नि अगिया = आग = चंडोल सूर्यका भी नाम है। अब ऋषि देवताका पता यूं लगता है-

१ (बार्हस्पत्यः) बृहस्पति वा सूर्यसे उत्पन्न (भरद्वाजः) एक किरण वा सूर्य रूपी चंडोल पक्षि—यह है ऋषि वा मंत्रका द्रष्टा = गानेवाला। इस गायक ने जिस विषयका गायन गाया, जिस विषयको स्वयं देखकर मनुष्योंको दिखाया वा सिखाया वह गायन वा विषय भी 'इन्द्र' = सूर्य ही है। अर्थात् ऋ.६।१८।१२ में सूर्यदेव मनुष्योंको अपना साक्षात् स्वयमेव करा रहे हैं। सिद्ध हुआ कि वेदोंका प्रकाशक भी साकार सूर्य ही है, निराकार परमात्मा नहीं।

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥ शत० १८।५।२।३

२. 'सूर्य से उत्पन्न सूर्य' ऐसा बार्हस्पत्यः भरद्वाजः का एक अर्थ हुआ। यह अर्थ सूर्यको स्वयम्भू सिद्ध कर रहा है, स्वयंभू सूर्य सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण जब इस लेखमालामें सिद्ध किया जा रहा है, तो वेदका प्रकाशकभी वही होना चाहिए। यह है ऋषि-देवता से निचोड़ा गया उपदेश। आगे मंत्रका ऋषि-देवता अनुकूल वा वेद-सम्मत अर्थ भी ऐसा ही होना चाहिए जिसमें ऋषि सूर्य देवता सूर्यका ही वर्णन कर रहें हों वह अर्थ ऐसा है—

ऋषि बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। देवता इन्द्रः।

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे माहिमा पृथिव्याः। नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ ऋ०६।१८।१२

अर्थ—(तुवि) असंख्यों (प्र) आदि (द्युम्नस्य) प्रकाशों वा शक्तियोंके (स्थविरस्य) स्थिर रखनेवाले उत्पादक तथा (घृष्वेः) उन्हें मिटा देनेवाले इन्द्र वा सूर्य की (महिमा) महत्ता (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक सूर्यलोक तथा पृथ्व्यादि ग्रहोंसे (रः) सूर्य प्रकाश स्वयमेव (रप्शे) गा रहा— स्तवन कर रहा है कि (न अस्य शत्रुः) उस सूर्यका कोई शत्रु नहीं, (न अस्य प्रतिमानम् अस्ति) नहीं उसका कोई बराबरी करनेवाला है और (न अस्य प्रतिष्ठिः) न कोई उसकी प्रस्थापना करनेवाला, स्थिर रखनेवाला है। (न अस्य पुरुमायस्य सह्योः) न इस सृष्टिमें उसकी मायाओं वा राजनीतियोंको सहन करनेवाला कोई है ॥ १२ ॥

भावार्थ—सृष्टिमें अनेक रंगोंके प्रकाशों और असंख्य प्रकारकी शक्तियोंका आदि उत्पादक पालक तथा मारक सूर्य ही है। सूर्य लोकसे आरंभ करके अनेकों ग्रहों, उप-ग्रहों, धूमकेतुओंतक सूर्यकी महिमा स्वयं सूर्यप्रकाश ही गाता आ रहा है। यह सूर्य प्रकाश दो प्रकारकी है। एक आधिभौतिक और दूसरा आध्यात्मिक धूप आधिभौतिक प्रकाश है, और वेद आध्यात्मिक प्रकाश है। इन दोनों प्रकाशों द्वारा सूर्यकी महिमा त्रिलोकी में गाई जा रही है, निराकार परमात्मा की नहीं ! वह महिमा क्या है ? वेदोपदेश है कि—

१. सूर्यका शत्रु = उसको पदच्युत करनेवाला His overthrower उसे नाश करनेवाला (His destroyer) उस पर विजय पानेवाला (His conguєror) सृष्टिमें कोई नहीं है।

२. सूर्यका प्रतिमान = सूर्यसे दर्शन, गुणों वा तोलमें समानता रखनेवाला सृष्टिमें कोई नहीं है। उसे बनाने, पूर्णतया जानने वा तोलनेवाला कोई नहीं है।

पुलस्त्य, वसिष्ठ ॥ महाभारत ॥

मनके मतसे ये ऋषि 'प्रजापति' वा मनुष्यके उत्पादक हैं, और वे ७ नहीं १० हैं। अर्थात् महाभारतके नामोंमें मनुने 'दक्ष वा प्रचेतस्, भृगु तथा नारद' इन तीन नामों को मिलाकर १० की संख्या पूरी कर दी ॥ आपटे ॥

अर्थ की दृष्टिसे ये सब ऋषि सूर्य किरणें सिद्ध की जा सकती हैं। सूर्य किरणें ही 'प्रजापति' भी है। इन ऋषियोंके नामों पर आर्योंके 'गोत्र' हैं। लंबा विषय है, अतः पाठक ही अधिक विचार करें। किरणोंके नामोंपर गोत्रोंका होना, पुनः सूर्यको सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध करता है।

३. सूर्यको स्थापन करनेवाला, स्थिर रखनेवाला उसका प्रतिष्ठि कोई नहीं है, कारण वह स्वयभू है। सूर्यका एक नाम ' प्रतिष्ठितः ' = प्रति+स्थितः = ' जगतके विरोधको अकेला उपस्थित ' है।

४ सूर्य पुरुमायिन् = अनेकों मायाओं, चमत्कारों, अज्ञात शक्तियोंसे न समझमें आनेवाली राजनीतियोंसे दुर्ज्ञेय, छल कपटोंसे भी दुष्टोंके लिए भरपूर है। छल कपटों, धोके बाजीसे भी पापी लोग उसकी शिक्षासे बच नहीं सकते। वह सबसे बडा धोकेबाज भी है। कुर्आनका ' खैरूल्मा-करीन ' मक्कारोंसे मकर, छलियोंसे छल करनेवाला अल्लाह यही है।

५. मनुष्यके किए छल—कपटोंसे मनुष्य बच भी जाता है, परंतु वेद कहता है कि ' उस मायावीकी माया-ओंका सहन करनेवाला भी कोई नहीं '।

रोगी बालक माताके गोदमें था। इन्जेकशन लगाते हुए डाक्टर माताको ढारस बंधा रहा था कि बालक दो तीन दिनमें पूर्ण स्वस्थ हो जायगा। इतनेमें दो हिचकियां आयीं, और बालक समाप्त ! माता चिल्ला रही थी अरे दौडो ! मैं लुट गई ! बडा कपटी है, बडा निर्दयी है, मेरे गोदसे बालकको छीन लिया। मैने मनमें कहा 'न अस्य पुरुमा-यस्य सह्यो '।

६. इस मंत्रका 'रः रप्शे' वाक्य ऋषि दयानंदके इस मतका आधार है कि सब लोक लोकांतरोंमें एक ही प्रकारके वेद हैं। 'रः' का अर्थ अग्नि वा तेज और 'रप्' धातुका अर्थ स्तुति करना है। सूर्यका अग्नि वा प्रकाश और ताप सब मंगलादि ग्रहोंमें सूर्यकी ही तो स्तुति गा रहा है यह हुवा भौतिक Material सूर्य प्रकाश— अतः सूर्यका आध्यात्मिक = Spritual प्रकाश वेद भी सब लोकोंमें समान होना चाहिए, यही सुसंगत न्याय है। इस दोहरी युक्तिसे पुनः साकार सूर्यही परमात्मा और सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपदान कारण सिद्ध होता है, निराकार परमात्मा नहीं।

उपसंहार—अध्याय ४ के इस खण्ड ५ का विषय था— 'सूर्य की प्रतिमा नही है तो किन अर्थोंमें ? इसका उत्तर ५ धाराओंमें यथाशक्ति यथामति देनेका यत्न किया है, और साथ ही कुछेक मंत्रोंके निराकारवादियों द्वारा किए गए अर्थोंपर भी इस हेतुसे प्रकाश डाला गया है कि पाठकोंके समान दोनों पक्ष एक साथ आजाएं कि सत्यासत्य का निर्णय वे स्वयं कर सकें। मतभेद रोगके समान छुपानेसे बढता ही जाता है और सूर्य-प्रकाशमें लानेसे हटता है। अतः सूर्यदेवसे प्रार्थना है कि वे हम सबोंको वैदिक सत्य = Seienfitic Truth का ग्रहण कराए।

यहां लेखांक ३ अध्याय ४ ' न तस्य प्रतिमा अस्ति ' का खण्ड ५ समाप्त होता है आगे खण्ड ६ का शीर्षक होगा—

सूर्यकी प्रतिमा है तो किन अर्थोंमें ?

टीप— वैदिक धर्म के पाठक पत्रद्वारा लेखकसे प्रश्न पूछ रहे हैं। इन सबको अलग अलग उत्तर देनेका लेखकको समय नहीं है। परन्तु लेखमालाकी समाप्तिपर सबको एक साथ **वैदिक धर्म** द्वारा ही उत्तर देनेकी इच्छा अवश्य है। इसीमें सबका भला है। (लेखक)

वैदिक धर्म

(वर्ष ३२)

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
(१) जनवरी १९५१	
१ प्रबल वीर	१
२ योगीश्री अरविन्द घोष	२
३ भारतके लोहपुरुषका स्वर्गारोहण	३
४ अर्थधर्म मीमांसा	५
५ पूज्य बापूके अमूल्य पत्र	१५
६ क्या हमारा जीवन और क्या हमारी आत्मकथा	२१
७ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	१२१ से १४४
(२) फर्वरी १९५१	
१ मानवी हितके लिये तत्पर वीर	२२
२ मा० मोरारजी भाई देसाई का स्वागत	२८
३ ,, ,, ,, ,, को मानपत्र	२९
४ स्वत्व, मूल्य आदिके स्वरूपका लौकिकत्व	३३
५ प्राचीन भारतीय पथ्य–विवेचन	४१
६ समालोचना	४६
७ एक पत्र	४८
८ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	१४५ से १६८
(३) मार्च १९५१	
१ जनताका हित करनेवाला वीर	४९
२ बम्बई राज्यमें संस्कृत-शिक्षायोजना	५०
३ श्री अरविन्दका महाप्रयाण	५३
४ संस्कृत भाषा प्रचारसमिति विवरण	५५
५ संस्कृते मूल पत्रम्	५७
६ कोशस्यावश्यकता	६०
७ बालपक्षाघात	६१
८ मूल्य–धन्य आदिके स्वरूप	६५
९ संस्कृत परिक्षा–सूचनायें	६८
१० वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	१६९ से १९२
(४) अप्रैल १९५१	
१ मातृभूमिका हित	६९
२ परीक्षाओंकी योजना	७०
३ ,, सूचना	७१
४ ' हिन्दु ' शब्दकी व्याख्या	७३
५ वेद सम्मेलनका उद्घाटन भाषण	
६ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	१९३–२१६
(५) मई १९५१	
१ बलकी वृद्धि	८१
२ औंधके स्वर्गीय महाराजा	८४
३ विदेशियोंकी दृष्टिमें भारत	८६
४ रामराज्यका एक दुखी आत्मा	८७
५ ईश्वर, मनुष्य और धर्म	९१
६ राजयोगके मूलतत्व और उनका अभ्यास	९५
७ अर्थधर्म मीमांसा	१०३
८ सत्यं, शिवं, सुन्दरम्	११०
९ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	२१७ से २३२
(६) जून १९५१	
१ हमारा संरक्षण	१११
२ कृष्ण कृष्ण हरि हरि	११२
३ विचारणीय पत्र	११३
४ ३१ मार्च व १ अप्रैलकी परीक्षाओंके निरीक्षक	११४
५ भारतीय संस्कृति का स्वरूप	११५
६ पुस्तक–परिचय	१२०
७ राजयोगके मूलतत्व और उनका अभ्यास	१२१
८ परीक्षा–विभाग	१२७
९ अर्थधर्म मीमांसा	१२९
१० कृष्णावतारमें अपहृत स्त्रियोंका प्रश्न	१३९

विषय	पृष्ठाङ्क
११ आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात	१३६
१२ ब्रह्म साक्षात्कार	१४२

(७) जुलाई १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ दक्षतापूर्वक उत्तम कर्म करें	१५१
२ विचार करना चाहिये	१५२
३ प्रमाणपत्र वितरण समारम्भ	१५३
४ संस्कृत भाषाके वृत्तपत्र	१५४
५ भारतीय संस्कृतिका स्वरूप	१५५
६ सौन्दर्य भावना, सत् चित् आनन्द	१६२
७ आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात	१६३
८ ब्रह्म साक्षात्कार	१७१
९ आर्य साम्राज्य का स्वरूप	१७७
१० संस्कृतकी लोकोक्तियाँ	१७९
११ अर्थधर्म मीमांसा	१८२

(८) अगस्त १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ बिखरे भारतीयोंका संगठन	१८७
२ हमने विश्वासघात किया है	१८८
३ भारतीय संस्कृतिका स्वरूप	१९१
४ राजयोगके मूलतत्व और उनका अभ्यास	१९९
५ रामराज्य और समाजवाद	२०८
६ संस्कृतकी लोकोक्तियाँ	२१२
७ परीक्षावृत्त	२१४
८ आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात	२१५
९ ब्रह्म साक्षात्कार	२१९
१० वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	२३३-२४०

(९) सितंबर १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ सन्मार्गसे चलना चाहिए	२२३
२ राहुलजीकी सम्मति	२२४
३ संस्कृतही भारतीय एकताकी प्रतीक	२२५
४ भारतीय संस्कृतिका स्वरूप	२२७
५ संस्कृतकी लोकोक्तियाँ	२३२
६ वैदिक व्याख्यानमाला (प्रथम व्याख्यान)	२३५
७ हिन्दु और हिन्दुधर्म	२५०
८ आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात	२५५
९ संस्कृत परीक्षा-समाचार	२६१
१० आवश्यक सूचनायें	२६२
११ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	२४१—२५६

(१०) अक्टूबर १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ वीरपुत्र होना चाहिए	२६३
२ संस्कृतके विषयमें अमूल्य सम्मतियाँ	२६४
३ हमारी एक वर्षकी प्रगति	२६५
४ भारतीय संस्कृतिका स्वरूप	२६७
५ संस्कृतकी लोकोक्तियाँ	२७१
६ पुस्तक परिचय	२७३
७ राजयोगके मूलतत्व और उनका अभ्यास	२७५
८ आर्य संस्कृतिपर कुठाराघात	२८३
९ ब्रह्म साक्षात्कार	२९१
१० वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	२५७—२८०

(११) नवम्बर १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ वीरोंकी प्रशंसा करें	२९५
२ किमियं मानवता ?	२९६
३ वेद, उपनिषद् गीता परीक्षायें	२९७
४ वैदिक अर्थव्यवस्था	२९९
५ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	२८१—३०४

(१२) दिसंबर १९५१

विषय	पृष्ठाङ्क
१ वेगवान् वीर	३१५
२ आगामी परीक्षायें	३१६
३ केन्द्र व्यवस्थापकोंसे	३१८
४ पुस्तक-परिचय	,,
५ भारतीय संस्कृतिका स्वरूप (लेखांक ८)	३१९
६ वैदिक शिक्षा विधान	३२३
७ ब्रह्म साक्षात्कार	३३१
८ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन	३०५-३२८

—:—:—:—

ॐ

अपना स्वराज्य

अपना स्वराज्य हम सबको प्राप्त है। दरिद्रीसे दरिद्री भी क्यों न हो, अथवा धनपतिसे बडा धनपति भी क्यों न हो, इन दोनोंको यह स्वराज्य समानतया जन्मसे ही प्राप्त है। इस अपने स्वराज्य पर हम अपना शासन चलावें, अथवा अपने राज्यको शत्रुके स्वाधीन करें, यह प्रत्येकका अधिकार है। यह प्रत्येककी इच्छा है।

यह अपना स्वराज्य कहां है? उत्तरमें कह सकते हैं कि यह अपना स्वराज्य इस अपने शरीरमें ही है। दूर किसी भी स्थानपर जानेकी आवश्यकता नहीं है। यह अपना जन्मके साथ प्राप्त शरीर ही अपना स्वराज्य है। यहांका राजा 'आत्मा' है, इसका शासन यहां चलना चाहिये।

बलवानका अधिकार

शासन तो बलवानका चलता है। निर्बलका शासन कोई नहीं मानता। 'ईशा वास्यं इदं सर्वं' (यजु० ४०।१) जो ईशन शक्तिसे युक्त है, उसीका इस विश्वपर शासन होगा। निर्बलका नहीं होगा। इसलिये इस शरीर पर अपना शासन चलाना है, तो प्रथम अपने अन्दर बल प्राप्त करना चाहिये। बलसे ही सब विश्व खडा है। देखिये--

शतं विज्ञानवतां एको बलवान् आकम्पयते,
स यदा बली भवति, अथ उत्थाता भवति,
उत्तिष्ठन् परिचरिता भवति, परिचरन् उपसत्ता भवति, उपसीदन् द्रष्टा भवति,
श्रोता भवति, मन्ता भवति, बोद्धा भवति,
कर्ता भवति, विज्ञाता भवति, बलेन वै
पृथिवी तिष्ठति, बलेन अन्तरिक्षं, बलेन द्यौः,
बलेन पर्वता, बलेन देवमनुष्या, बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्या-
कीटपतङ्गपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति,
बलमुपास्व इति। छां० उ० ७।८।१

'बल विज्ञानसे श्रेष्ठ है, अकेला बलवान् मनुष्य सैकडों विज्ञानी मनुष्योंको कंपित करता है- डराता है। वह जब बलवान् होता है तब वह उठता है, जब उठता है तब वह सेवा करने लगता है, जो जनसेवा करता है वह जनप्रिय होता है, वही देखनेवाला, श्रोता, मननकर्ता, ज्ञाता होता है। बलसे यह पृथिवी स्थिर रहती है, बलसे अन्तरिक्ष, बलसे द्युलोक, बलसे ये पर्वत स्थिर रहे हैं। बलसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, घास, वनस्पतियाँ, कृमिकीट, चीटियाँ, पतंग ये सब स्थिर रहते हैं। बलसे सब लोक स्थिर रहते हैं, इसलिये बलकी उपासना करो।' विना बलके इस जगत्में कुछ भी नहीं होता। इसलिये बल प्राप्त करना चाहिये।

अपने शरीरके अन्दरका राज्य हो अथवा बाहरका राज्य, साम्राज्य हो, बलसे ही वह चलाया जा सकता है। निर्बलसे इस जगत्में कुछ भी नहीं होता। निर्बलको तो सब दबाते हैं। इस जगत्में निर्बलके लिये कोई आशा नहीं है। इसलिये पर्याप्त बल प्राप्त करना चाहिये। पर्याप्त सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये। बलसे ही स्वराज्य शासन चलाया जा सकता है।

सम्राट् और अधिकारी

यह शरीर अपना स्वराज्य है। इस राज्यमें किस तरह अधिकारियोंको नियुक्ती की जाती है, इस विषयमें उपनिषदोंमें बडा अच्छा वर्णन है--

यथा सम्राट् एव अधिकृतान् विनियुंक्ते, एतान्
ग्रामान्, एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व इति।
एवमेव एष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक्पृथ-

गेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥ पायूपस्थेऽपानं, चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते, मध्ये तु समानः। प्रश्न० उ० ३।४-५

'जिस तरह सम्राट् स्वयं अधिकारी राजपुरुषोंको कहता है कि तू इन ग्रामोंपर और तू इन ग्रामोंपर अधिकार चलाओ, इसी तरह यह मुख्य प्राण अन्य प्राणोंको पृथक् पृथक् स्थानोंपर नियुक्त करता है, मलमूत्र स्थानोंमें अपानको, मुख-नासिका-नेत्र-कर्ण इन स्थानोंपर मुख्य प्राण स्वयं रहता है, और मध्यमें समान प्राण रहता है।'

इस तरह सम्राट्के अधिकारियोंकी नियुक्ति करनेकी उपमा प्राणोंकी यथास्थान नियुक्ति करनेके लिये दी है। यह उपमा ऐसी भी हो सकती है कि, जिस तरह मुख्य प्राण अन्य प्राणों और उपप्राणोंको शरीरके भिन्न भिन्न विभागोंपर नियुक्त करता है, उस तरह सम्राट् अपने प्रान्ताधिकारियोंको पृथक् पृथक् प्रान्तोंपर नियुक्त करता है। इसका अर्थ यह है कि जैसा भूमिपर किसी सम्राट्का साम्राज्य होता है और उसके प्रान्ताधिकारी तथा नगराधिकारी होते हैं, ठीक इस तरह शरीरका सम्राट् आत्मा शरीरके नाना विभागोंपर अपने अधिकारियोंको नियुक्त करता है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि जैसा इस शरीरका सम्राट् अपने अधिकारियोंको अपने शरीरके विभागोंपर नियुक्त करता है, वैसा सम्राट् अपने अधिकारियोंको अपने साम्राज्यके प्रान्तोंपर नियुक्त करता है। शरीरमें जैसा साम्राज्य है, वैसाही भूमिपर भी है, और जैसा साम्राज्य भूमिपर होता है वैसा ही शरीरमें भी है। शरीरका साम्राज्य छोटा और पृथ्वी परका साम्राज्य विस्तृत है। छोटा और विस्तृत इतना इनमें भेद है, परंतु बाकी व्यवस्थामें दोनों साम्राज्य समान ही हैं।

राष्ट्रकी तालिका

शरीरमें	साम्राज्यमें
१ ३३ करोड अणुजीव रहते हैं।	१ ३३ करोड मनुष्य रहते हैं।
२ प्रत्येक अणुजीव स्वतंत्र रीतिसे जन्मता, रहता और मरता है।	२ प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रीतिसे जन्मता, रहता और मरता है।
३ शरीरमें इंद्रिय और अवयव अनेक होते हैं।	३ राष्ट्रमें प्रान्त और प्रविभाग अनेक होते हैं।
४ प्रत्येक इंद्रिय और अवयवका अधिष्ठाता भिन्न भिन्न होता है।	४ प्रत्येक प्रांतपर एक अधिकारी भिन्न भिन्न होता है।
५ शरीरमें इंद्रियां भोग करनेवाली और प्राण भोग न करनेवाले हैं।	५ राष्ट्रमें वैतनिक सेवक और अवैतनिक स्वयंसेवक होते हैं।
६ शरीर शासक आत्मा है।	६ राष्ट्रशासक सम्राट् है।

इस तरह शरीर और राष्ट्रमें शासनव्यवस्थाकी समता है। ऋषियोंने यह प्रत्यक्ष देखी और इसकी तुलना की और दोनोंके साम्यका वर्णन किया। ये ही सामान्य नियम स्थायी स्वयंभू और सुखदायी है।

३३ कोटी प्रजाजन

इस शरीरके अवयवोंका वर्णन अब हम करते हैं। शरीरमें ३३ कोटी अणुजीव हैं। ये शरीरके नाना प्रान्त-विभागोंमें रहते हैं। १ नासिकाविभाग, २ जिह्वा विभाग ३ नेत्र विभाग, ४ त्वचा विभाग, ५ कर्ण विभाग ये पांच विभाग ज्ञानियोंके प्रान्तोंके हैं। अब श्रमजीवियोंके प्रान्तोंके विभाग देखिये- हाथ, पांव, मुख, गुदा और शिश्न ये पांच विभाग श्रमजीवियोंके क्षेत्रोंमें हैं। इसके अतिरिक्त प्राण विभागके पांच मुख्य प्राण और पांच उप प्राण मिलकर दस विभाग होते हैं। मुख्य प्राणका प्रान्त

छाती और इसके ऊपरका प्रदेश है, अपान नाभी के नीचले प्रदेशमें रहता है, व्यान सब शरीरमें संचार करता है, उदान ऊर्ध्व गतिसे संचार करता है, समान उदरके स्थानमें रहकर खाये अन्नका रस करता है। पांच उपप्राणोंके क्षेत्र भी ऐसे ही इस शरीरमें हैं।

इनके अतिरिक्त मस्तिष्क, पृष्ठवंश, दो फेंफडे, हृदय, यकृत्, प्लीहा, दो मूत्राशय, पेट, मलाशय ये मुख्य प्रान्त हैं, तथा मन बुद्धि मिलकर तेरह प्रान्त हुए। पांच ज्ञानके इंद्रिय, पांच कर्मके इन्द्रिय, पांच मुख्य प्राण, पांच उपप्राण, ये बीस हैं और ऊपर गिनाये तेरह प्रान्त, सब मिलकर ३३ प्रान्त हुए। इन सबका मुख्य अधिष्ठाता आत्मा है। आत्मा सबमें मुख्य और अन्य ३३ अधिकारी गौण हैं। इस तरह यह आत्माका स्वराज्य अपने शरीरमें है। आत्मा यहां राज्य करता है। इनमेंसे प्रत्येक प्रांतपर एक एक अधिकारी रहता है जो वहांका व्यवहार देखता है।

वैतनिक सेवक

जिस तरह राज्यशासनमें अनेक वैतनिक अधिकारी होते हैं, प्रान्ताधिकारी, विभागाधिकारी, ग्रामाधिकारा, आरक्षक, सैनिक इस तरह यहां शरीरमें भी पूर्वोक्त प्रान्तोंके एक एक अधिकारी है, उसके सहायक अधिकारी भी वहां उसकी सहायता करते हैं। ये सब वैतनिक सेवक हैं। ये भोगरूप वेतन लेते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका भोगक्षेत्र पृथक् पृथक् है। शरीर जो अन्न खाता है, उसका रस इनके पोषण के लिये इनको मिलता है। यथा प्रमाण वह रस ये लेते हैं। इसके अतिरिक्त भी इनको भोग मिलता है।

नासिका पृथ्वीसे गन्ध लेती है। सुगंध लेकर यह नासाधिकारी संतुष्ट होता है, दुर्गंध आगया तो सतप्त होता है। सुगंध जितना चाहे इसके कार्यालयमें आवे, वह इसका भोग करेगा, पर थोडासा दुर्गन्ध आया तो यह क्रोधी होगा। इस तरहका यह भोगी अधिकारी है। दूसरा ओहदेदार रसनाधीश है, जिह्वा इसका कार्यालय है। इसको मीठे स्वादु पदार्थ भोगके लिये चाहिये, कई यहां ऐसे भी रहते हैं कि वे तिक्त, खट्टा आदि रस पसंद करते हैं। रस छः हैं, इनमेंसे इसको जो जैसा रस चाहिये वह मिला तो यह संतुष्ट रहता है, वह न मिला तो यह बिगड बैठता है। इस तरह छः रस इसके भोगका क्षेत्र है। इसमें यह विहार करता है।

तीसरा यहांका अधिकारी नयन-वीर है। इसका क्षेत्र आंख है। इसको सुन्दर रूप प्रिय हैं। जितनी सुंदरता है उसमें यह रमता है और कुरूप वस्तु सामने आगयी तो यह क्रोधी हो जाता है। सौंदर्यसे लुब्ध होनेवाला यह अधिकारी है। चौथा त्वचाका अधिकारी है। इसको मृदु कोमल स्पर्श चाहिये। इससे यह प्रसन्न होता है। किसी समय इसके पास कठोर स्पर्शकी वस्तु आगयी, तो यह क्रोध करने लगता है। पांचवा अधिकारी कर्ण है। यह बडा वीर है, परंतु यह वीर मीठे स्वरसे प्रसन्न होता है और कर्कश कठोर स्वरसे अप्रसन्न होता है। मधुर गायन हुआ तो उसमें यह रमेगा, परंतु कर्णकठोर शब्द आने लगा, तो यह बडा अप्रसन्न हो जाता है।

इस राज्यके ये अधिकारी ऐसे भोगी हैं, ऐष आराम करनेवाले हैं, वेतन लेकर ये कार्य करते हैं। वेतन न मिला, भोग न मिले, तो ये अप्रसन्न होते हैं और हडताल भी करते हैं और कार्य करना बंद भी कर देते हैं॥ अपने भोगों पर इनकी दृष्टी सदा टिकी रहती है, समग्र शरीररूपी राष्ट्रका क्या होगा, उसका कल्याण होगा या नहीं, हमने कार्य करना छोड दिया, तो इस अखण्ड शरीररूप राष्ट्रका क्या होगा, इस बातकी इनको पर्वाह नहीं है। मेरे लिये भोग चाहिये, वे पर्याप्त मुझे मिलने चाहिये। शेष राष्ट्रका जो चाहे सो बने, इसका विचार ये कभी करते नहीं।

भोगी अधिकारी

अनेक वार ये अड जाते हैं, कार्य करना छोड देते हैं, हडताल करते हैं। इसीका नाम रोग है। आंखमें मोतीया होता है, नाकसे गंध लेनेका कार्य बंद हो जाता है, कान शब्दोंका श्रवण नहीं करते, इस तरह इनके सत्याग्रह वारंवार शुरू होते हैं और इस कारण इनके झगडे मिटाते मिटाते राजा आत्माराम बडे कष्टोंका अनुभव करता है। सब संघका हित देखना चाहिये, अपने ही वैयक्तिक भोगलालसामें फंसना नहीं चाहिये, इस तत्त्वज्ञानका उपदेश सुननेपर भी ये स्वार्थी वैतनिक सेवक उपदेश न सुननेके समान बर्ताव करते हैं। वेतनपर ही

दृष्टी रखनेवाले और अपने कर्तव्यका विचार न करनेवाले अधिकारियोंसे ऐसा ही क्लेश होना स्वाभाविक है। भोगी अधिकारी ऐसा ही करेंगे।

ये कभी कभी शत्रुके अधीन भी हो जाते हैं। अपने क्षेत्रका संरक्षण ये ठीक तरह नहीं करते, वहां शत्रु आक्रमण करता है, उस प्रांतका अधिकार अपने अधीन करके शत्रु बैठ जाता है। ऐसी विपत्ति कभी कभी इन वैतनिक, सुखलुब्ध, स्वार्थी सेवकोंके कारण इस शरीररूपी राष्ट्र पर आजाती है। फिर बडे प्रयत्नसे उस शत्रुको हटानेका प्रयत्न करना पडता है। इसीको रोग और चिकित्सा कहते हैं।

अवैतनिक स्वयंसेवक

इस देहरूपी राष्ट्रके वैतनिक सेवकोंकी वृत्ति जैसी ऊपर बतायी है वैसी है। परंतु इस शरीररूपी राष्ट्रमें अवैतनिक स्वयंसेवक भी रहते हैं। वे प्रारंभसे अन्ततक अपना कार्य अवैतनिक सेवा करनेके उच्च आदर्शसे करते रहते हैं। राष्ट्रका उच्च जीवन इन स्वयं सेवकोंकी सेवापर निर्भर रहता है। इन अवैतनिक स्वयसेवकोंका संचार शरीररूपी संपूर्ण राष्ट्रमें होता रहता है। ये कुछ भी वेतन लेते नहीं, विश्राम लेते नहीं, भोग भोगते नहीं, खाते नहीं, परंतु दिन रात शरीररूपी राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा करते रहते हैं। जन्मसे मृत्युपर्यंत इनकी अवैतनिक सेवा चलती रहती है, क्षण भर भी इनको विश्राम नहीं मिलता।

आंख, नाक, कान, आदि जो वैतनिक सेवक हैं वे भोग भोगते, खाते पीते, विश्राम करते, ऐष आराममें मस्त रहते हैं। पर ये प्राणरूप अवैतनिक स्वयंसेवक दिन रात न थकते, न विश्राम लेते, लगातार सेवाके कार्यमें लगे रहते हैं। मृत्युके समयके पूर्व ही आंख, नाक, कान, आदि वैतनिक सेवक अपना कार्य बंद करके चुप बैठ जाते हैं, परंतु ये प्राणरूपी सब स्वयसेवक मृत्युके अन्तिम क्षणतक, जीनेकी संपूर्ण आशा छूट जानेपर भी सेवा करते ही रहते हैं। ऐसे ये अवैतनिक स्वयंसेवक हैं, इसलिये यह शरीररूपी राष्ट्र विपत्तियां आनेपर भी जीवित रहता है। यदि इसका जीवन ज्ञान-कर्मके इंद्रियोंपर ही निर्भर रहेगा, तो यह शरीररूपी राष्ट्र जीवन युक्त रहेगा ही नहीं। पर इन प्राणरूपी अवैतनिक स्वयंसेवकों पर इस शरीररूपी राष्ट्रका जीवन निर्भर रहता है और ये आलस्य छोडकर सेवाभावसे कार्य करते रहते हैं, इसलिये यह शरीररूपी राष्ट्र उत्साहमय रहता है।

वैतनिक और अवैतनिकोंका झगडा

आंख नाक कान, इन वैतनिक सेवकोंका प्राणरूपी स्वयं सेवकोंके साथ एक वार झगडा हुआ। प्राण कहता था कि मेरी सेवाके कारण यह शरीर जीवित रहता है, ज्ञान कर्म इंद्रियां इसको माननेसे इनकार करने लगीं और कहने लगीं कि हमारी सेवासे ही यह शरीर जीवित रहता है। इस तरह इन्द्रियों और प्राणोंमें बडा झगडा हो गया। उसका वर्णन देखिये—

> ते प्रकाश्य अभिवदन्ति वयं एतद्बाणं अवष्टभ्य विधारयामः॥ २॥ तान् वरिष्ठः प्राण उवाच, मा मोहं आपद्यथ, अहं एव एतत् पञ्चधा आत्मानं प्रविभज्य एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति। ते अश्रद्दधाना बभूवुः॥ ३॥ सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमते इव। तस्मिन्नुत्क्रामति अथ इतरे सर्व एव उत्क्रामन्ते। तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानं उत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्ते एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रीताः प्राण स्तुवन्ति॥ ४॥ प्रश्न० उ० २

प्राण और इन्द्रियोंके झगडेका वृत्त ऐसा है-

इन्द्रियाँ कहने लगीं-हम सब मिलकर इस शरीरको सुदृढ करके धारण करती हैं।

प्राण बोला— हे इन्द्रियो! तुम ऐसे भ्रममें न फंसो। तुम्हारे अन्दर इस शरीरको दृढ करके धारण करनेकी शक्ति नहीं है। यह कार्य मेरा है। मैं अपने आपको पांच विभागोंमें (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समानमें) विभक्त करके और पांच स्थानोंमें रहकर इस शरीरको सुदृढ करके धारण करता हूं। तुम्हारे अन्दर भी मैं ही जीवन रखता हूं।

इन्द्रियां— इसपर हमारा विश्वास नहीं बैठता। क्योंकि

देखना सुनना चखना आदि सब कार्य हम ही करते हैं, जिससे इस शरीरकी धारणा हो रही है। यह प्रत्यक्ष है। तुम तो यहां हमारे जैसा कुछ भी उपयोगी कार्य नहीं करते। इसलिये हम ही इस शरीरका धारण कर रहे हैं यह सिद्ध होता है।

प्राण— यह तुम्हारी कल्पना असत्य है। यदि मेरी शक्ति तुम्हें न मिली, तो तुमसे कुछ भी कार्य नहीं होगा, इसलिये सब बल मेरा है, तुम्हारा नहीं।

इंद्रियां— ऐसा तो हम नहीं मान सकते। प्रत्यक्षके विरुद्ध कौन कैसा मान सकता है?

प्राण— मेरी शक्ति तुमको देखनी है?

इंद्रियां— हां, दिखाओ, तुम्हारी शक्ति कहां है?

प्राण— देखो, मैं अब इस शरीरको छोड देता हूं, देखो, मेरे जानेसे क्या बनता है।

इंद्रियां- हां, चले जाओ, हम यहां रहकर यहांका कार्य चलायेंगे।

ऐसा इतना झगडा होनेपर प्राण इस शरीरको छोडनेकी तैयारी करने लगा। वह प्राण थोडासा ऊपर उठा, शरीर छोडने जैसा करने लगा, तो चमत्कार यह हुआ, कि सभी इन्द्रियां उस प्राणके साथ ही अपने स्थानसे उखड जाने लगीं! सब इंद्रियोंमें घबराहट उत्पन्न हुई। किसीको भी प्राणके विना हम रहेंगे और कार्य करेंगे ऐसा विश्वास नहीं रहा। सब इंद्रियां अपनी निर्बलता मालूम करने लगी। तब उनकी घबराहट देखकर प्राण उनको कहने लगा-

प्राण- क्या मैं इस शरीरको पूर्णतया छोड दूं? मेरे जानेपर आप यहांका कार्य सभालेंगे?

इन्द्रियाँ- नहीं, नहीं, महाराज! आपके विना हमारा यहां रहना भी अशक्य है, कार्य करना तो दूर ही है। महाराज! आपकी शक्तिसे ही हम सब कार्य कर रहे हैं। आप ही हम सबमें श्रेष्ठ वरिष्ट और हम सबके आधार हैं। हम आपके ही आश्रयमें रहकर कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। हम अपनी शक्तिसे कुछ भी नहीं कर सकते। यह सब आपहीकी महिमा है।

प्राण- अब तुम्हारे ध्यानमें सत्य बात आगयी यह ठीक हुआ। अब यही ध्यानमें रखो।

यह झगडेका वृत्त तो काल्पनिक है। यहां इतना ही बताना है कि प्राण-जिनको हमने अवैतनिक स्वयं सेवक कहा वे मुख्य हैं, उनकी शक्तिसे शरीरकी सब इंद्रियां अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ होती हैं। इन इन्द्रियोंको हमने वैतनिक सेवक कहा है।

राष्ट्रके शासनमें इससे यह बोध मिलता है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक जो कि राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा केवल सेवा भावसे, अपना कर्तव्य समझ कर करते हैं, राष्ट्रमें वे श्रेष्ठ हैं और जो वैतनिक सेवक हैं, जो आराम विश्राम करते हुए, भोग भोगते हुए, वेतन पर ध्यान करते हुए अपना कार्य करते हैं, उनकी सेवा उन स्वयंसेवकोंसे कम महत्वकी है। वेतन मिला तो ही वे सेवा करेंगे, परंतु ये स्वयंसेवक ऐसे हैं कि जो केवल कर्तव्य बुद्धिसे ही कार्य करते हैं। राष्ट्रीय शासन क्षेत्रमें यह बोध यहां मिलता है, जो महत्त्व पूर्ण है।

प्रान्त और अधिकारी

शरीररूपी राष्ट्रमें पूर्वस्थानमें बताया ही है कि यहां ३३ प्रांत हैं, प्रत्येक प्रांत पर एक एक अधिकारी है, और उस प्रांतमें एक एक कोटी अणुजीव रहते हैं जो उस क्षेत्रके रहनेवाले हैं। वे वहांका नियत कार्य करते रहते हैं।

इन प्रान्ताधिकारियोंके नीचे छोटे छोटे अधिकारी कार्य करनेवाले अनंत कार्यकर्ता होते हैं। प्रत्येक स्थानपर एक अधिष्ठाता और अनेक कार्यकर्ता होते हैं और इस देह रूपी विशाल राष्ट्रका सब कार्य इनके द्वारा चलता है। इन सबमें प्राणकी शक्ति जाकर सबको उत्साहित करती रहती है। इसका नाम 'वीरभद्र' है अथवा 'भद्र वीर' कहिये। कल्याण करनेवाला यह वीर है। यह बडा शक्तिवाला है और इसके नीचे दस प्राण उपप्राण मिलकर उक्त प्रान्तोंमें स्वय सेवकोंका कार्य करते हैं।

प्रान्ताधिकारी ३३ हैं, उनका मुख्य अधिष्ठाता मन है। मनकी देखरेख रही तो ही ये प्रान्ताधिकारी अपने अपने प्रान्तका कार्य करते रहते हैं। मन देखनेके लिये न रहा तो ये वैतनिक सेवक अपना कार्य छोडकर आलस्यमें समय बितायेंगे। कार्य करने न करनेकी इनको पर्वा नहीं है। काम कम करना पडे, भोग अधिक मिले, विश्राम अधिक मिले, ऐसा इनका सदा विचार रहता है। इसलिये मनको इनके पीछे पड पडकर इनसे काम लेना पडता है। इस-

लिये बिचारे मनको एक क्षणकी भी फुरसत नहीं। यह बिचारा इधरसे उधर, उधरसे इधर घूमता और दौड लगाता रहता है, और इंद्रियोंसे काम लेता रहता है। इस मनकी इस प्राणके साथ घनिष्ठ मित्रता है।

प्राण और मन

प्राण चलने लगा तो मन चलने लगता है और प्राण स्तब्ध रहा तो मन स्तब्ध रहता है। इसलिये प्राणायामसे मन स्थिर और शान्त करनेकी विधि योगियोंने सिद्ध की और वह उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे कैसा लाभ होता है यह देखिये। प्राणायामसे प्राणका बल बढाया जाता है, इससे मन बलवान हो जाता है। मन बलवान हुआ तो उसके आधीन ३३ प्रान्ताधिकारी रहते हैं, वे मनके निरीक्षणमें ही कार्य करते हैं। इसलिये जो विचार मनमें रहेगा, वैसा कार्य शरीरके विभागोंमें हो सकता है अथवा किया जा सकता है। यह नियम इतना निश्चित है कि इसमें भूल नहीं होती।

किसी इन्द्रिय और अवयवमें कुछ विकार या रोगका प्रादुर्भाव हुआ, तो प्राणके आश्रयसे रहनेवाले मनको अनुकूल प्रेरणा दी जाय। मन वैसा हेरफेर वहां करने लगता है और इष्ट परिणाम वहां होता है। इससे वहांका रोग दूर होगा और वहांका आरोग्य स्थिर रहेगा। शरीरके प्रत्येक इन्द्रिय और अवयवमें यह मन इस तरह इष्ट परिणाम करता है। और यदि मनमें बुरे विचार रहे, तो अनिष्ट परिणाम भी यही मन करता है। इसलिये मनको सुविचारमय करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। '**मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः**' -मन ही मनुष्योंके बंध और मोक्षका मुख्य कारण है ऐसा जो कहा है वह नितान्त सत्य है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्-
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६५ ॥
वा० यजु० ३४

' जिस तरह उत्तम सारथी रथके घोडोंको उत्तम मार्गपर चलाता है, उस तरह हृदयमें रहनेवाला यह जरारहित, सदा तरुण जैसा रहनेवाला यह मन इस शरीरको चलाता है वह शुभसंकल्पयुक्त हो।' मन शुभसंकल्पयुक्त करनेका उपदेश यहां है वह इसलिये है कि, इस मनने शुभसंकल्प किये तो मनका तथा संपूर्ण मानवका हित होता है और अशुभ संकल्प किये तो सबका अधःपतन होता है।

मन सब इंद्रियोंका स्वामी है, अधिपति और ईश है। सब इंद्रियाँ मनके आधीन हैं। इसलिये मनके विचार परिशुद्ध चाहिये, मनमें शुभ विचार ही रहने चाहिये। मनके विषयमें और कहा है-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥ वा० य० ३४

जागनेवाले मनुष्यका मन दूर दूर जाता है, और सुप्त अवस्थामें भी वैसा ही जाता है, यह दैवी शक्तिसे युक्त मन दूर दूर जानेवाला ज्योतियोंका ज्योति जैसा तेजस्वी है, वह मेरा मन शुभ संकल्प करनेवाला हो।' तथा

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥ वा० य० ३४

' जो प्रज्ञावान्, चेतना देनेवाला और धैर्यवान् है, जो ज्योतिरूप अमृत जैसा तेज प्रजाजनोंमें रखता है, जिसके बिना कुछ भी कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

इस मनकी सहायताके बिना कुछ भी कर्म नहीं किया जा सकता, वह मन शुभसंकल्प करनेवाला हो। इस शरीररूपी राष्ट्रमें राजा 'आत्मा' है, बुद्धि उस आत्माकी सहधर्मचारिणी तथा संमति देनेवाली है, मन उसका मंत्री है, सब इंद्रियां उसके विविध प्रांतोंके अधिकारी हैं, सब प्राण इसके राष्ट्रमें स्वयंसेवक हैं। इस राष्ट्रमें करोडों अणुजीव हैं। यहां यह राज्यप्रबंध कैसा है यह जानना चाहिये और अपने आत्माका शासन यहां चलता है यह देखना और अनुभव करना चाहिये।

संकल्पका परिणाम

"मैं आत्मा हूं। मैं इस शरीररूपी राज्यका शासक हूं। यह मेरा स्वराज्य है और मैं इस स्वराज्यका शासक 'स्वराट्' हूं। मैं जो अनुशासन चलाऊंगा वही यहां विधान चलेगा। इस राज्यके दिव्य स्वयंसेवक ये सब प्राण हैं। इनकी सेवा यहां अखंड रीतिसे चल रही है। यहां हमारी सहायक बुद्धि है। मन संपूर्ण इंद्रियों और अवय-वोंका अधिष्ठाता है। इसलिये मैं मनको आज्ञा करता हूं कि वह शुभसंकल्प करता रहे। मैं नहीं चाहता कि इस मेरे राज्यमें अशुभवृत्ती धारण करनेवाला कोई हो। मैं नहीं चाहता कि इस मेरे राज्यमें अशुभ परिणाम करनेवाली कोई वस्तुका प्रवेश हो। यहा मेरे इस राज्यमें सब इन्द्रियाँ शुभ प्रवृत्तिवाली हों, अन्न जल शुभ परिणाम करनेवाला इस शरीरमें जाय, मन शुभसंकल्प करे, यहां अशुभ कामनाका सपर्क ही न हो।

पापभाव और पाप वासना हमारे इस राज्यमें न आवे। कुविचार और कुसंकल्प हमारे पास न आवे। यहां शुभ भावनाओंका आनन्दपूर्ण वायुमण्डल रहे। मैं अपने धर्म भावनामय अनुशासनसे कुसंकल्पोंको यहां आने ही नहीं दूंगा। इस तरह यह यहांका राजा कह सकता है और यह जैसा कहता है वैसा ही यहां हो सकता है। अन्त.करण शुभ विचारमय करना चाहिये। जिससे यहां आनन्दमय जीवन हो सकता है।

शुभ संकल्पवाला अपना मन बनानेसे इस शरीररूपी राष्ट्रमें रोग आदि आपत्तियाँ नहीं भोगनी पडेगी। यहां सदा स्वास्थ्य रहेगा, आनन्द और सामर्थ्य यहां सदा रहेगा। अनुपम प्रसन्नता रहेगी।

शत्रुओंका आक्रमण

इस शरीररूपी राष्ट्रपर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर तथा अन्यान्य शत्रु आक्रमण करनेके लिये तैयार रहते हैं। जिस समय अनुशासनकी शिथिलता होती है, उसी समय ये शत्रु अन्दर घुसते हैं और यहां अपना अधिकार जमानेका यत्न करते हैं। यदि अनुशासन ढीला हुआ, तो सब शरीररूपी राष्ट्रपर ये अधिकार जमाते हैं और आत्मा बुद्धि मनको घेरते हैं और अनेक आपत्तियां

❀

निर्माण करते हैं। इसलिये यहां कदापि अनुशासनकी शिथिलता होने नहीं देना चाहिये। अनुशासन जितना जाग्रत और तीव्र होगा, उतना अधिक कल्याण यहा होगा, और अनुशासनकी शिथिलता होते ही अनेक विपत्तियां घेरेंगी और अनेक कष्ट भोगने पडेंगे।

यहां प्राणरूप स्वयसेवक जन्मसे मृत्युतक जागते हुए रक्षणका कार्य उत्तम रीतिसे करते रहते हैं। इनके जाग्र सुरक्षाके सुप्रबंधसे ही किसीमें प्रमाद होनेपर भी विपत्ति भोगनी नहीं पडती। इसलिये प्राणोंका महत्व विशेष है।

यह अपने राष्ट्रका स्वरूप है। हमें प्रयत्न इस विषयक करना चाहिये कि यहा हमारा ही अनुशासन चले और किसी अन्य शत्रुका अधिकार यहा न हो। संयम और निग्रहसे अपने इन्द्रियों और अगोंका नियमन करना चाहिये। ढिलाई यहा नही होने देना चाहिये। सयमकी आवश्यकता बतानेके लिये यहां कई प्रकारके उपदेशपरक वर्णन कहे हैं। उनमें प्रथम रथ और घोडेकी उपमासे कैसा सुंदर वर्णन है वह देखिये–

रथ, घोडे और सारथी

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३॥
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

कठ. ३

'यहां आत्मा रथी है, रथका स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और मन लगाम है। इन्द्रियाँ घोडे हैं, वे विषयोंमें संचार करते हैं। आत्मा-इंद्रिय-मन मिलकर भोक्ता कहलाता है।' यहां रथकी उपमा शरीरको देकर और इंद्रियोंको घोडे कहकर संयम कैसा करना चाहिये इसीका वर्णन किया है।

जिस तरह रथके घोडे सारथीके अधीन ही रहने चाहिये, सारथीके हाथमें लगाम रहने चाहिये, और सारथीने रथको उत्तम मार्गसे अपने इष्ट स्थान तक पहुंचाना चाहिये। इस तरह सब इंद्रियां, सब अंग और सब अवयव अपने स्वाधीन रहने चाहिये। किसी एकका भी स्वेच्छाचार हुआ तो वह सब शरीरके नाशके लिये कारण होगा। इसलिये यहां सयमका उपदेश अत्यंत महत्वका है।

रथको जोते गये घोडे शिक्षित होने चाहिये। घोडे अच्छी तरहसे सुशिक्षित न रहे, तो वे सारथीके आधीन नहीं रहेंगे और रथको किसी गढेमें गिरा देंगे इसका पता नहीं लगेगा। सारथी अच्छी तरह चलानेकी कलामें कुशल न रहा, तो वह सुशिक्षित घोडोंको भी अच्छी तरह चला नहीं सकेगा और इधर उधर ले जाकर गिरा देगा। रथ सुदृढ न रहा तो बीचमें ही टूटेगा और रथी अपने पहुंचनेके स्थानपर नहीं पहुंच सकेगा। घोडोंकी लगामें उत्तम अवस्थामें न रहीं और बीचमें ही टूट गयीं, तो अच्छे घोडे भी ठीक तरह चलाये नहीं जा सकेंगे। मार्ग भी अच्छा सीधा चाहिये, गढोंवाला हो तो उसमें रथ, घोडे और सारथीके गिरनेकी संभावना होगी। इस तरह शरीरको रथकी, इंद्रियोंको घोडोंकी, बुद्धिको सारथीकी, मनको लगामोंकी उपमा देकर ये सब साधन ठीक चाहिये और स्वाधीन भी रहने चाहिये, ऐसा सूचित किया है वह बडा उपयोगी बोध है।

संयमका उपदेश

यहां शरीरधारी जीवको अपने मन बुद्धि चित्त अहंकार और इंद्रियोंका संयम करके उनको स्वाधीन रखनेका तो उपदेश है। मनःसंयम और इन्द्रियदमन यहां रहा तो ही ठीक है, नहीं तो असंयमसे बडी हानीकी संभावना है। यह उपदेश व्यक्तिके सुधारके लिये तो अत्यंत ही स्वीकार करने योग्य है। पर आत्माको स्वराट् और शरीरको आत्माका स्वराज्य कहकर यही शरीरके लिये किया हुआ उपदेश राष्ट्रमें ढालनेके लिये भी सूचित किया है। राष्ट्रके अधिकारी, राष्ट्र सभाके सभासद, तथा अन्यान्य कर्मचारी सबके सब सुशिक्षित संयमी, अपने आपपर नियमन रखनेवाले, नीरोग, बलवान्, शत्रुको वश न होनेवाले चाहिये। यदि ऐसे न रहे तो राष्ट्रका राष्ट्र विनष्ट हो जायगा इसमें संदेह नहीं है। शरीरको राष्ट्र करके वर्णन करनेसे शरीरके वर्णनसे राष्ट्र शासनके लिये उत्तम बोध मिलता है और यही वैदिक शैलीकी विशेषता है।

राष्ट्ररूपी रथ

राष्ट्र एक रथ है, उसको अनेक अधिकारी जो शासनका कार्य करते हैं वे घोडे हैं, बुद्धि राजसभा है, मन महामंत्री अथवा मन्त्रीमंडल है, राष्ट्राधिकारी महामंत्रीके आधीन रहकर शासनका कार्य करते हैं, यहां सैनिक, आरक्षक तथा स्वयंसेवक प्राण हैं जो रातदिन राष्ट्रीय सुरक्षा करनेमें तत्पर रहते हैं। अन्य प्रजाजन राष्ट्रमें रहनेवाले हैं। उन सबको सुख आनंद और प्रसन्नताकी अवस्थातक पहुंचानेके लिये राष्ट्रशासन चलाया जा रहा है और इसका दायित्व राष्ट्राध्यक्षपर राष्ट्रशासक पर है। इस अलंकारका मनन करनेसे राष्ट्रशासन विषयक कितना उत्तम बोध मिल सकता है उसका पाठक विचार करें। इस विचारके लिये निम्नस्थानमें लिखी तालिका बहुत उपयोगी हो सकती है-

शरीरमें	राष्ट्रमें
जीव, आत्मा	राष्ट्रमें जीवन फैलानेवाला अध्यक्ष
शरीरका अधिष्ठाता	राष्ट्राध्यक्षक, शासक, प्रजापति
बुद्धि, मति, मेधा, धारणा, चिंतनशक्ति	राष्ट्रशासकको सुसंमति देनेवाली राष्ट्रसभा।
मन, अहंकार	महामंत्री, राष्ट्राभिमान, मंत्रीमंडल
ज्ञान इंद्रियां	ज्ञान प्रसार करनेवाले शिक्षित लोग
कर्म इंद्रियां	कर्मकुशल कार्यकर्ता, शिल्पी,
प्राण, उपप्राण	रक्षक, आरक्षक, सैनिक, स्वयंसेवक,
इंद्रिय, अंग, अवयव	प्रांत, उपप्रांत और विभाग
शरीर (व्यक्ति)	राष्ट्र, देश (समूह)

इस तरह शरीरके नियम राष्ट्रमें ढाले जाते हैं और उससे राष्ट्रीयशासनके विषयमें उत्तम बोध मिल सकता है। यह बोध यहां लेना चाहिये और हमारा राष्ट्रीयजीवन भी ऐसा उत्तम आदर्श मानने योग्य होना चाहिये।

राष्ट्रमें राष्ट्राध्यक्षसे लेकर प्रान्ताधिकारी, ग्रामाधिकारी ये सबके सब सुशिक्षित, कर्तव्य दक्ष, संयमी, अत्याचार न करनेवाले होने चाहिये। अपने नियत कार्यमें वे प्रवीण रहने चाहिये। महामंत्रीकी आज्ञामें रहकर राष्ट्रशासन तत्परतासे करनेवाले चाहिये। रक्षक सैनिक सबके सब रक्षणकर्म में प्रवीण चाहिये। शत्रुको वश होनेवाला यहां कोई नहीं चाहिये। शत्रुसे मिलनेवाला एक भी रहा तो वह राष्ट्रपर आपत्ति ला सकता है। और इस तरह आपत्ति आगयी तो उसका निवारण करना अत्यंत ही प्रयासका कार्य होता है। जैसा शरीरमें रोग लाना सहज हो सकता है, शरीरको नीरोग रखना ही कठिन है और उससे भी कठिन आये रोगको हटाना है। इसी तरह राष्ट्रको दक्षतासे सुरक्षित रखना अत्यंत प्रयाससे करनेपर ही होनेवाला कार्य है। शत्रुको बुलाकर लाना और उसके आधीन होकर अपना स्वातंत्र्य खोनेमें तो कोई कष्ट नहीं है। पर ऐसा पतन होनेपर जो सबको कष्ट होंगे वे महा भयंकर हैं। इसलिये सबको उचित है कि वे अपने राष्ट्रका संरक्षण करें, शत्रुके साथ कभी न मिलें और अपनी तथा अपने राष्ट्रकी सुरक्षामें ही अपनी सुरक्षा समझें।

व्यक्तिका शरीर व्यक्तिका अपना राष्ट्र है। ऐसा कहकर व्यक्तिके शरीरका वर्णन करनेसे वही राष्ट्रका वर्णन कैसा होता है और उसीसे कितना उत्तम राष्ट्रहितका बोध मिल सकता है वह हमने यहां देखा। अब वेदमें शरीरका और कैसा कैसा वर्णन किया है वह देखेंगे—

सप्त ऋषियोंका आश्रम

वेदमें शरीरके लिये अत्यंत पवित्र उपमा सप्त ऋषियोंके आश्रमकी दी है। वह अत्यंत बोधप्रद है वह अब देखिये-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयु-
स्तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥

वा० य० ३४।५५

"प्रत्येक शरीररूपी आश्रममें सात ऋषि रहते हैं, वे प्रमाद न करते हुए इस यज्ञस्थानका संरक्षण करते हैं। यहां सात जलप्रवाह सोनेवालेके स्थानको वापस जाते हैं और उसी यज्ञस्थानमें दो देव विश्राम न करते हुए जागते रहते हैं।" यह इस शरीरका ही वर्णन है। इसके पूर्व शरीरको राष्ट्र मानकर तथा शरीरको रथ मानकर वर्णन किया है। अब यहां वेद मन्त्र स्वयं शरीरको ऋषियोंका आश्रम मानकर वर्णन कर रहे हैं। राष्ट्रकी उपमा देकर वर्णन करनेमें यहां दक्षतासे संरक्षण होना चाहिये यह उपदेश मिला, रथ घोडे आदिके वर्णनसे इंद्रियोंकी स्वाधीनता तथा सुशिक्षाका उपदेश मिला है, अब ऋषि आश्रमके वर्णनसे पवित्रता तथा ज्ञाननिष्ठाका बोध मिल रहा है-

यहां इस शरीररूपी आश्रममें सात ऋषि बैठकर तपस्या कर रहे हैं। अर्थात् यह शरीर सप्त ऋषियोंका आश्रम है। यहां ये ऋषि अपनी अपनी कुटियामें रहते हैं और अपना ज्ञानसत्र चलाते रहते हैं। प्रत्येक शरीरमें (**प्रति शरीरे सप्त ऋषयः हिताः**) ये सात ऋषि हैं। सब मानवोंके शरीरोंमें हैं, प्रत्येक मनुष्यके शरीररूपी आश्रममें ये सात ऋषि हैं। इसी तरह पशुपक्षियोंके शरीरोंमें भी हैं। मनुष्य शरीरमें जैसे ये प्रौढ और कार्यक्षम हैं, वैसे पशु शरीरमें नहीं है। पर वहां भी ये हैं। सप्त ऋषियोंका निवास प्रत्येक शरीरमें है।

दो आंख, दो कान, दो नाक और एक जिह्वा ये सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें हैं। 'ऋषि' वह है कि जो (ऋषयः क्रान्तदर्शिनः) क्रान्तदर्शी होता है, दूरका देखता है, दिव्यशक्तिसे दूरका देखता है आंख दूरका देखते हैं, कान दूरका सुनते हैं, नाक दूरसे गंध लेता है, जिह्वा शब्द बोलती है जो दूरसे सुनाई देता है। इस तरह ये ऋषि दूरदर्शी हैं, दूरसे ज्ञान लेते और ज्ञान देते हैं। ये ज्ञान प्रसारका कार्य करते रहते हैं। ज्ञान सत्र अथवा ज्ञानयज्ञ ही इन्होंने प्रारंभ किया है और अन्त तक ज्ञान क्षेत्रमें ही ये कार्य करते रहेंगे। अतः इनको ऋषि कहा है। ऋषि तो आश्रममें रहते हैं इसलिये इस शरीरको ऋषि आश्रम कहा गया है। ऋषि पवित्र रहते हैं और निर्दोष आचरण करते हैं, इसलिये इन इंद्रियोंको पवित्र रहकर निर्दोष आचरण करना चाहिये।

(सप्त ऋषयः अप्रमादं सदं रक्षन्ति) ये सात ऋषि अपने आचारमें प्रमाद नहीं करते और इस यज्ञ मण्डपगृहका उत्तम संरक्षण करते हैं। इसी तरह मनुष्यको प्रमाद न करते हुए अपने शरीरका और राजपुरुषोंको अपने राष्ट्रका प्रमाद न करते हुए उत्तम संरक्षण करना चाहिये। आंख दूरसे देखती है और कहती है कि दक्ष रहो शत्रु आरहा है। कान शब्द सुनता है, शब्दसे शत्रु मित्रको पहचानता है और कहता है, सावधान रहो शत्रु इस दिशासे आरहा है। नाक गंध सूंघता है और शत्रुको गंधसे ही पहचानता है और कहता है हां, इधरसे शत्रु आ रहा है। इस तरह ये ऋषि शत्रुको जानते हैं और संरक्षकोंको कहते हैं कि यह शत्रु है, इसे दूर करो।

ऐसा ही राष्ट्रमें करना चाहिये और राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिये। दूर दूरके स्थानों और देशोंमें क्या चला है यह जानकर वहां शत्रु कहां छिपे हैं, उनका पता लेकर उनको दूर या विनष्ट करना चाहिये। रंग रूप शब्द हलचल आदिसे दूरके शत्रुओंको पहचानना और उनको दूर करना योग्य है। ऋषिके आश्रमोंपर राक्षस आक्रमण करते हैं और यज्ञका नाश करते हैं, इसका निवारण ऋषि करते हैं और आश्रमका संरक्षण करते हैं। यह कथा इस शरीरमें ही देखने योग्य है। ऋषियोंके आश्रमोंका विध्वंस तो राक्षस करते ही थे, राष्ट्रपर आक्रमण भी राक्षस ही करते रहते है, पर शरीररूपी आश्रमपर अथवा शरीररूपी राष्ट्रपर भी रोगादि बाह्य शत्रु और दुष्टविकार आदि अन्त शत्रु आक्रमण करते हैं और इस शतसांवत्सरीक यज्ञका नाश करते हैं। पाठक यहां इन शत्रुओंका नाश करना है यह ध्यानमें रखें। हमारा शरीररूपी राष्ट्र जैसा उत्तम अवस्थामें रहना चाहिये वैसा ही हमारा विशाल राष्ट्र भी उज्ज्वल अवस्थामें प्रकाशता रहना चाहिये।

आश्रमकी सात नदियाँ

यहां शरीरका और वर्णन करते हैं। 'सप्त आपः स्वपतः लोकं ईयुः' सात जलप्रवाह, सात नदियां सोनेवालेके लोकको पहुचती है। यहां सोनेवाला अन्तःकरणके साथ आत्मा है। उसका स्थान मनसे परे है। ये सात इंद्रिय प्रवाह आंखका दर्शनप्रवाह, कानका श्रवणप्रवाह, नाकका गन्धग्रहणप्रवाह, जिह्वाका रसग्रहणप्रवाह, त्वचाका स्पर्श ग्रहणप्रवाह जागृतिमें बाहरकी ओर चलता रहता है। इंद्रियाँ बाहरकी ओर देखती हैं अर्थात् उनके क्रियाप्रवाह अन्दरसे बाहरकी ओर जाते है। पर जब (स्वपतः लोकं ईयुः) वे प्रवाह सोनेवालेके स्थानको पहुंचते हैं, अर्थात् जब गाढ निद्रा आजाती है, जब निद्राकी स्थिति प्राप्त होती है, तब येही प्रवाह अन्तर्मुख हो जाते हैं। इन इन्द्रियोंके प्रवाह बाह्यविश्वकी ओर जानेका ही नाम "जाग्रती" है और इनके प्रवाह अन्तर्मुख होकर आत्माकी ओर जाने लगे और उसमें लीन हुए तो वही गाढ निद्रा होती है। इसलिये कहा है कि सप्त ऋषियोंके आश्रमकी ये सात नदियां जाग्रतिमें बाहरकी ओर जाती हैं और सुषुप्तिके समय वापस आकर आत्मामें लीन होती है।

जागनेवाले वीर

इस समय (तत्र जाग्रतः अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ) इस ऋषि आश्रममें दो देव जो कभी विश्राम नहीं करते, कभी निद्रा भी नहीं लेते और सतत आश्रममें ही जागते रहते हैं। आश्रमकी सुरक्षाके लिये सतत प्रयत्न करते रहते हैं। इनका नाम 'श्वास और उच्छ्वास' है। ये दो देव हैं जो इसके संरक्षणार्थ अविश्रांत परिश्रम करते रहते है। ये प्राण अवैतनिक स्वयंसेवक है।

कितना उत्तम शरीरका यह वर्णन है। यह शरीर सच मुच ऋषियोंका आश्रम बन जाय तो कितना अच्छा होगा। ऋषियोंकी ज्ञाननिष्ठा सुप्रसिद्ध है, वैसा ही आचारकी पवित्रता, धर्मनिष्ठा, ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेकी उत्सुकता आदि अनेक शुभ गुण ऋषि शब्दके साथ जुडे हैं। ज्ञानसे प्रशस्त कर्म करनेकी प्रवृत्ती उत्पन्न होती है, प्रशस्तकर्मोंसे इह परलोकका सुख निःसंदेह प्राप्त हो सकता है। इसका परिणाम दीर्घजीवनकी प्राप्ति और उत्साहपूर्ण व्यवहार होनेकी संभावनामें है। शरीरको सप्त ऋषियोंका आश्रम कहनेसे शरीरको अर्थात् शरीर, मन बुद्धिको अत्यंत पवित्र रखनेका दायित्व वहांके अधिष्ठातापर आता है। और उसको निभाना आवश्यक है। ये सप्त ऋषि यहांकी सुरक्षा प्रमादरहित होकर करते हैं। इसलिये हमें भी वैसा करना चाहिये। शरीरकी तथा राष्ट्रकी सुरक्षा दक्षतासे करनी चाहिये। किसी तरह उसमें न्यूनता नहीं होनी चाहिये।

यहां दो देव जागते हैं, वे सोते नहीं, विश्राम नहीं करते, रातदिन कडा पहरा करते हैं। ये स्वयंसेवक हैं। राष्ट्रकी सुरक्षाका भार इनपर है। इस वर्णनसे व्यक्ति तथा राष्ट्रकी सुरक्षाके संबंधकी बहुतसी बातें समझमें आगयी हैं। जैसी व्यक्तिमें पवित्रता रखनी चाहिये वैसी ही राष्ट्रमें भी पवित्रता रखनी चाहिये।

दैवी रचना

जैसा शरीरमें राष्ट्र है, शरीर ऋषि आश्रम है, वैसी ही यह एक अलौकिक अथवा दैवी रचना भी है। इस संबंधमें ऐतरेय उपनिषद्में कहा है।—

अग्निः वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुः भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्,
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्,
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्,
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्,
मृत्युः अपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्,
आपो रेतो भूत्वा शिस्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥

ऐ० उ० १।२

" अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बनकर नासिकामें प्रविष्ट हुआ, सूर्य नेत्र बनकर आखोंमें प्रविष्ट हुआ, दिशाएं श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानोंमें प्रविष्ट हो गयी, ओषधि वनस्पतियां लोम बनकर त्वचामें प्रविष्ट हुई, चन्द्रमा मन बनकर हृदयमें प्रविष्ट हुआ, मृत्यु अपान बनकर नाभिमें प्रविष्ट हुआ, जल वीर्य बनकर शिस्नमें प्रविष्ट हुआ। "

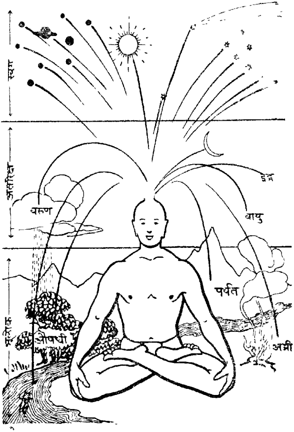
इस रीतिसे अन्यान्य देवताएँ शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें आकर रहीं हैं। संपूर्ण ३३ देवताओंका निवास इस शरीरमें है। इस तरह यह शरीर 'देवोंका मन्दिर' है। इस समय तक शरीरको राष्ट्र कहा, शरीरको रथ कहा, शरीरको ऋषि आश्रम कहा, अब उसी शरीरको 'देवोंका मन्दिर' कहते हैं। एक देवका मन्दिर नहीं परंतु ३३ देवोंका यह मन्दिर है, नहीं नहीं प्रत्युत ३३ कोटी देवोंका यह शरीर मदिर है। इसलिये अथर्व वेदमें 'देवानां पूः' (देवोंकी नगरी) कहा है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० १०।२।३१

" आठ चक्रोंवाली तथा नौ द्वारोंवाली यह देवोंकी नगरी शत्रुद्वारा युद्ध करके पराजित न होनेवाली है। इस नगरीमें सुवर्णमय कोश है, जो तेजसे वेष्टित स्वर्ग है। " यह वर्णन इस शरीररूपी नगरीका है। यह अयोध्या नगरी है। यहां रामचन्द्रजी राज्य करते हैं। सच्चा राम-राज्य यह शरीरका स्वराज्य है। इसके संरक्षण करनेके लिये इसके चारों ओर बडा भारी प्राकार है, यह एक बडा प्रचण्ड किला है, इस दुर्गके प्राकारको नौ द्वार हैं और इस दुर्गपर आठचक्र लगे हैं वहां शत्रुनाशके सब उत्कृष्ट यन्त्रादि सब साधन रखे हैं, जो योग्य समय पर शुरू होकर शत्रु का नाश करते हैं। यह 'अ-योध्या' शत्रु द्वारा आक्रमण होने अयोग्य है। कितना भी बलवान शत्रु रहा, तो वह इस नगरीको पराजित करके इसको अपने आधीन नहीं कर सकता, ऐसी यह दुर्ग प्राकारोंवाली अभेद्य नगरी है। कोई शत्रु इसमें घुस नहीं सकता, ऐसी इसके संरक्षणकी योजना है। इस नगरीमें सर्वत्र (ज्योतिषा आवृतः) चारों ओर तेज ही तेज, प्रकाश ही प्रकाश है। अन्धेरेका नाम निशान नहीं है। इस नगरीमें (हिरण्ययः कोशः) सुवर्णका भरा हुआ कोश है। यह कोश धन रत्नोंसे भर-पूर भरा है। धनकी कमी यहां नहीं है। यह देवोंकी नगरी है। स्वय देव यहां आकर रहते हैं। ऊपर बताया है कि, सूर्यादि देव यहां आकर रहे हैं, अर्थात् सूर्यादि देवोंके अंश आकर यहां बसे हैं और एक एक प्रांतका अथवा एक एक विभागका वे आधिपत्य कर रहे हैं।

ये देव यहां कैसे किस मार्गसे आये यह उनका आनेका मार्ग बतानेवाला चित्र यहां बताया है। जो ब्रह्माण्डमें है वह सब अंशरूपसे इस शरीररूपी पिण्डमें है। विश्वमें ऐसा कोई शक्तिकेन्द्र नहीं, कि जिसका अंश इस शरीरमें आकर न रहा हो। अर्थात् जो विश्वमें है वह सब अंशरूपसे इस शरीरमें है और जो यहां है उसका बृहद्रूप विश्वमें है। मानो यह शरीर विश्वका एक अंशही है।



इस विषयका वर्णन वेद मंत्रोंमें इस तरह आता है-

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताजायत ॥८॥
ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोकमासते ॥१०॥
शरीरं कृत्वा पादवत्कं लोकमनु प्राविशत् ॥११॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥२९॥

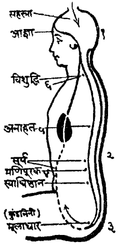
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे ॥ ११ ॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवा गावो गोष्ठ इवासते ॥ १२ ॥

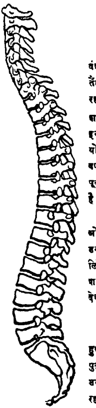
अथर्व ११।८

" इन्द्र, सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता ये कहांसे हुए ? देवोंसे जो पुत्ररूप देव बने वे दस देव थे, अपने पुत्ररूप देवोंको उन्होंने नया स्थान बनाकर दिया और वे पश्चात् किस लोकमें रहने लगे ! चलनेवाला शरीर बनाकर वे देव भला कहां रहने लगे ! संसिच् नामक वे देव हैं, जो सब संभार इकट्ठा करते हैं । उन्होंने इस मर्त्य शरीरको जीवनसे सिंचन किया और वे देव पुरुष शरीरमें घुस गये । रेतका घी करके देव मनुष्य शरीरमें घुसे हैं । सूर्य चक्षु बना, वायु प्राण बना, और ये देव पुरुषके शरीरमें अंग अंगमें विभक्त होकर रहने लगे हैं । इसलिये ज्ञानी मनुष्य " पुरुष-मनुष्यको ' यह ब्रह्म है ' ऐसा कहता है । " सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, इस मनुष्य शरीरमें रहती हैं । "

इन मंत्रोंमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि (गोष्ठे गाव. इव सर्वाः देवताः अस्मिन् आसते) गोशालामें गौवें रहनेके समान सब देवताएं इस मानव शरीरमें रहती हैं । सब देवताएं रहती हैं, एक भी देवता ऐसी नहीं है, कि जो इस मनुष्य शरीरमें न रहती हो । यद्यपि इन मन्त्रोंमें ४।५ देवताओंके हो नाम दिये हैं, तथापि वह केवल उपलक्षण मात्र ही है । सब तैंतीस देवताएं तथा उनकी सहचारी गौण देवताएं भी अंश रूपसे इस शरीरमें आकर रहती हैं ।

इस मन्त्रमें कहा है कि (पुत्रेभ्यः लोकं दत्वा) अपने निजपुत्रोंको इस शरीरमें (लोकं दत्वा) स्थान दिया और पिता रूप देव अपने अपने नियत स्थानमें रहने लगे हैं । बाहरके विश्वमें सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत्, जल आदि तत्त्व बडे विशाल हैं, उनके अंश अर्थात् उनके पुत्र उत्पन्न हुए । इन पुत्रोंको स्थान करके देना पिताका कर्तव्य ही है । इसलिये (गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषं आविशन्) यह शरीर-- यह मरनेवाला शरीर-- निर्माण करके सब देव इसमें घुस गये हैं । गर्भाधान यज्ञमें मनुष्य के रेतरूपी घृतकी आहुती देकर, उसमेंसे देव इस मानव शरीरमें घुस गये हैं । ये मन्त्र शरीरमें देवोंका निवास होनेके विषयमें बडा विज्ञान दे रहे हैं ।





इस शरीरको निर्माण करके देव उसमें घुसे हैं। इसका द्वार विदृति करते हैं । यह द्वार बालकका जन्म होनेपर भी खुलासा रहता है । इस द्वारसे देवताओंके सब अंश जो आत्माके साथ आये थे, वे शरीरमें प्रविष्ट हुए । यहांसे वे पृष्ठ-वंशमें गये । इस पृष्ठ-वंशके मज्जा केन्द्रोंमें- ये केन्द्र तैंतीस हैं- वे ३३ देवोंके अंश रहने लगे और वहांसे सब शरीरका संचालन वे करने लगे हैं । इनमेंसे केवल आठ ही केन्द्र योग साधनमें लिये हैं । जिसका वर्णन ' अष्टाचक्रा ' करके इसके पूर्वके स्थानमें दिये मंत्रमें आगया है ।

वास्तविक तैंतीस मज्जातन्तुओंके केन्द्र इस पृष्ठवंशमें हैं, उनमेंसे मुख्य आठ योगियोंने लिये हैं । इस तरह प्रत्येक शरीरके अंग, इंद्रिय और अवयवमें देवता रहते हैं ।

बीज और वृक्ष

पितादेवसे पुत्रदेव उत्पन्न हुए हैं । यहां पितारूप देवोंने पुत्ररूप देव उत्पन्न किये और उनको शरीरके अंग प्रत्यंगोंमें रहनेके लिये स्थान दिया और पितादेव अपने स्थानमें

वापस चले गये। ऐसा कहा है। उसका भाव यह है कि जैसे वृक्षके सब अवयवोंके अंश बीजमें उतरते हैं, जैसे पिताके शरीरके सब अवयवोंके अंश उसके वीर्यकणमें उतरते हैं, उसी तरह परमात्माका यह विश्वरूप देह है, उससे निकले जगद्बीजमें, परमात्माके शरीरमें अर्थात् संपूर्ण विश्वमें रहनेवाले सब पदार्थोंके अंश आकर रहे हैं। परब्रह्मका अंश जीव, सूर्यका अंश नेत्र, वायुका अंश प्राण, जलका अंश रसना; पृथ्वीका अंश नासिका आदि प्रकार विश्वधारक सब देवताओंके अंश एकत्रित होकर यह शरीर बना है। यह शरीर तो देवतामय है, एक एक, अणुमें देवताओंके अंश हैं। शरीरका कोई अंश ऐसा नहीं है कि, जहां देवताओंका वास्तव्य न होता हो। प्रत्येक शरीरका प्रत्येक विभाग देवताके अंशसे बना है। अर्थात् जैसे विश्वमें तैंतीस करोड देवताएं हैं, उसी तरह इस शरीरमें भी तैंतीस करोड देवताओंके अंश आकर रहते हैं।

शरीरके प्रत्येक विभागमें जो अधिष्ठाता रहता है उसके आधीन ये वहांकी सब देवताएँ हैं। और इसपर मनका अधिकार है। मन देवोंका राजा है। इन्द्रियोंका अधिपति मन है। यहां जो प्राण हैं वे महारुद्र हैं, रक्षण और संहार का कार्य इनके आधीन है।

शरीरमें कोई स्थान ऐसा नहीं है कि जहां देवताओंका निवास नहीं है। सब शरीर देवतामय है। इसलिये इसको 'देवानां पूः' देवताओंकी नगरी कहा है। श्री कृष्णकी द्वारावती अथवा 'द्वारका' जिसको (नव-द्वारा) नौ द्वार हैं, यही शरीर है। और श्रीरामचन्द्रकी अयोध्या यही है। पूर्वोक्त एक ही मंत्रमें 'नवद्वारा' और 'अयोध्या' ये पद इसीका दर्शन करा रहे हैं।

देवताओंसे लाभ

विश्वमें सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् अग्नि आदि विश्वव्यापक देवताएं हैं। इनके अंश नेत्र, मन, प्राण आदि इस शरीरमें रहते हैं। शरीरमें जो अंश रहते हैं, वे बाह्य बृहद्देवताओंके अंश होनेके कारण, अथवा इनका पिता पुत्र जैसा संबंध होनेके कारण, इस संबंधसे हम बडा लाभ उठा सकते हैं।

देखिये सूर्यका अंश नेत्र है, इसलिये नेत्रका आरोग्य सूर्यके किरणोंसे बढ सकता है, प्राणकी शक्ति बाह्य वायुके संबंधसे बढती है, इस तरह बाह्य विश्वकी सब देवताएं इस शरीरके अन्दर रहनेवाले अपने अंशरूप पुत्रोंकी पालना कर रहे हैं। इसका अनुभव अपने दैनिक व्यवहारमें भी ले सकते हैं। विश्वमें अन्न, धान्य, फल, साग आदि उत्पन्न होता है, उसका सेवन करनेसे मनुष्यका शरीर हृष्टपुष्ट हो जाता है। विश्वमें जल है, इस जलका पान करनेसे मनुष्यकी तृषा शमन हो जाती है, बाह्य विश्वमें प्रकाश है उसकी सहायतासे हमारे नेत्र देखते हैं। इस तरह दिन रात हमारा संचार विश्वकी देवताओंके अन्दर हो रहा है, हमारे आगे पीछे, ऊपर नीचे, हमारे चारों ओर विश्वकी सब देवताएं ही देवताएं है और प्रतिक्षण हम उन देवताओंमें उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते हैं और प्रत्येक क्षण हमारे इंद्रिय और अवयव उनसे शक्ति प्राप्त करते रहते हैं। यह व्यक्तिका विश्वसे संबंध है।

शक्ति प्राप्त करनेका अनुष्ठान

हमारे शरीरके अन्दरके देवतांश अल्प शक्तिवाले हैं। विश्वके अन्दरकी देवताएं बडी विशाल और महाशक्तिवाली हैं। हमारे शरीरकी देवता विश्वकी देवताके साथ मिलती और उससे शक्ति प्राप्त करती हैं। यदि हमारा संबंध बाह्य विश्वके साथ न हुआ, तो व्यक्तिके जीवित रहनेकी भी संभावना नहीं है। बाह्य जलवायुसे हमारा संबंध स्थायी रूपसे टूट जानेपर हम कुछ क्षण भर भी जीवित नहीं रहेंगे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, बाह्य विश्वकी देवताओंके साथ रहनेसे ही हमारा जीवन रहता है। परमात्माके विश्वशरीरसे जीवात्माके छोटे शरीरका संबंध है। वह पिता है, हम उसके अमृत पुत्र हैं। यह संबंध सदा ध्यानमें रखनेयोग्य है। हमारे शरीरके अन्दरके देवतांशोंसे विश्वव्यापक विशाल देवताओंका अनन्य संबंध है। उससे हम पृथक् नहीं हैं। एकरूप हैं। परमात्माका आंख सूर्य है, उस सूर्यका अंश हमारा आंख है। इसी तरह हमारे संपूर्ण इंद्रियों अंगों और अवयवोंके साथ परमात्माके विश्व शरीर का अटूट तथा अनन्य संबंध है।

अब हम अपने इन्द्रियोंसे विश्वशरीरकी उन महाशक्तियोंका संबंध विशेष घनीभूत कर सकते हैं। ऐसा

संबंध बढानेका कार्य हमने शुरू किया तो उससे हमारे अन्दर शक्तिका संवर्धन होगा और हमारे इंद्रियकी शक्तिका हम विकास कर सकेंगे। हमारे इन्द्रिय इस तरह विशेष प्रभाव भी उत्पन्न कर सकते हैं।

यह योग है। वैयक्तिक शक्तिका विश्वशक्तिसे योग होता है और इससे विश्वकी महाशक्ति व्यक्तिमें थोडी थोडी उतरती है। अपना विश्वसे अटूट संबंध इस तरह जोडा जा सकता है। इसी तरह विश्वकी महाशक्तिसे अपना योग करना चाहिये।

मैं कौन हूं ?

मैं देवोंका राजा हूं, सब देव इस शरीरमें रहनेवाले मेरे प्रजाजन हैं। इनपर मैं शासन कर रहा हूं। यह शरीर देवोंकी सभा है, इन्द्र रुद्र मरुत् आदि सब देव इस सभामें विराजमान हैं। ये सब इस शरीरमें कार्य कर रहे हैं। मैं आत्मा इन सबका शासक हूँ। मेरा अनुशासन इनपर चलता है। देवसभाका अध्यक्ष होनेका भाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। यह कितना बडा अधिकार है ? यह शरीर हीनदीन या तुच्छ नहीं है। अनंत शक्तियाँ यहां बीजरूपसे हैं, उनका समविकास करना मेरा कर्तव्य है। यह कार्य मैं करूंगा।

वैदिक धर्मने इस शरीरको रथकी और इंद्रियोंको घोडों की उपमा देकर कहा कि इंद्रियोंका संयम करना चाहिये और इंद्रियोंमें सुशिक्षा द्वारा कर्मकी कुशलता प्राप्त करनी चाहिये। इसी तरह शरीरको राष्ट्र कहकर उसका यथा योग्य शासन करनेका दायित्व मनुष्य पर रख दिया। इसके नंतर शरीरको ऋषि आश्रम कह कर यहां पवित्रता और ज्ञानदृष्टीका अत्यत महत्व है यह बताया। अब यहां प्रत्यक्ष देवोंका निवास है ऐसा कहकर, इस शरीरको देवोंका राष्ट्र बताकर, इसमें नाना प्रकारकी शक्तियोंका निवास है यह स्पष्ट कर दिया है और इन शक्तियोंका विकास करनेकी युक्ति भी बता दी है। इस सब वर्णनसे स्पष्ट हुआ है कि यह शरीर अनन्त शक्तियोंका बीज है, जो विकासको प्राप्त करके विकसित हो सकता है।

वृक्ष और बीजमें देखिये वृक्षमें जितनी शक्तियाँ होती हैं उनका बीजमें अविकसित रूपमें सद्भाव होता है। वृक्षका मूल, धड, शाखा, टहनियां, पत्ते, फूल फल आदि सबका सब बीजमें सूक्ष्म अंश रहता है और विकसित होकर वही बीज वृक्षाकार बनता है। बीजमें वृक्षही सूक्ष्म रूपसे है और वृक्ष बीजका ही विस्तार है। इसी तरह मनुष्य शरीर और उसका वीर्यबिन्दुका संबंध है। वीर्य बिंदुसे शरीर बनता है और शरीर फिर बिंदु बन जाता है। इसी तरह परमपिताका और हम अमृत पुत्रका संबंध है।

मधुकर राजा और मधुमक्षिकाएं

ब्रह्मका अंश और तैंतीस देवताओंके तैंतीस अंश मधुमक्षिका और मधुमक्खियोंका राजा जैसे रहते हैं। मधु मक्खियोंका राजा जहां जाता है, वहां अन्य मक्खियां जाती हैं। वैसा ही ब्रह्मका अंश जहां रहता है वहां तैंतीस देवोंके अंश रहते हैं। तैंतीस देवताओंके तैंतीस अंश और उनका अधिष्ठाता आत्मा इस शरीरमें आकर सौ वर्ष चलने वाला यज्ञ करें, यह जीव अपने लिये यज्ञभूमि कौनसी अच्छी है, इसका निरीक्षण करता है और किसीके योग्यगर्भमें आता है। गर्भमें ये सब ३४ शक्तियां जातीं हैं और उस गर्भके शरीरमें रहती है। यह बालकका स्वरूप है। यही जानना चाहिये। वैदिक कल्पना बालकके विषयमें यह है। यह कितनी उत्तम है इसका विचार पाठक करें। किसीके घरमें जब बालक उत्पन्न होता है वह इतनी शक्तियोंके समेत उत्पन्न होता है। यह इस शरीररूपी यज्ञभूमिमें रहकर सौवर्ष चलानेवाला सत्र करनेके लिये जन्मता है। इसलिये सौवर्ष जीवित रहकर अपना जीवन यज्ञीय बनाना प्रत्येक मनुष्यके लिये योग्य है।

वैदिक धर्ममें मनुष्यके शरीरकी ऐसी उच्च कल्पना है। इसके विपरीत बुद्धधर्मने शरीरको 'पीप-विष्ठा-मूतका गोला,' 'पिंजरा,' 'जेलखाना' आदि बताकर शरीरके विषयमें हीनतम कल्पना फैला दी है और अपने शरीरके विषयमें घृणा उत्पन्न की है। वह सब अयोग्य कल्पना है, हानिकारक है, अतः त्याज्य है।

पाठक वैदिक कल्पनाका स्वीकार करें और उससे अपनी उन्नति करके स्वराज्यका आनन्द प्राप्त करें। वैदिक स्वराज्य शासनके लिये भी ऐसे ही अपने शरीरका स्वराज्य जाननेवाले उत्तम पुरुष चाहिये। इनसे ही वैदिक स्वराज्य शासन सिद्ध हो सकेगा, जो मनुष्योंका आनन्द निःसंदेह बढानेवाला होगा।

प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर देनेका यत्न कीजिये—

१ राष्ट्रपर कौन अधिकार कर सकता है ?

२ बलका महत्त्व कितना है ?

३ सम्राट् और उसके अधिकारी शरीरमें और राष्ट्रमें बताइये।

४ कितने प्रजाजन हैं और वे कितने प्रांतोंमें रहते हैं ?

५ वैतनिक सेवक कौन हैं और अवैतनिक स्वयंसेवक कौनसे हैं ? उनका वर्णन करो।

६ भोगी अधिकारी होनेसे क्या होता है ? क्या स्वयंसेवक भोग नहीं भोगते ? वे कहां रहते और क्या करते हैं ?

७ वैतनिक सेवकों और अवैतनिक स्वयंसेवकोंका झगडा क्यों हुआ ? अन्तमें निर्णय क्या हुआ ? कौन जीत गया ?

८ इस राष्ट्रमें कितने प्रांत हैं और उनके नाम कौनसे हैं, उनके अधिकारियोंके नाम कहो।

९ प्राण और मनका संबंध क्या है ? मनको शुभ संकल्पवाला क्यों करना चाहिये ? मनकी शक्ति कितनी है ? मनके संकल्पविकल्पका परिणाम शरीरपर कैसा होता है ?

१० शत्रुओंका आक्रमण इस राष्ट्रपर किस तरह होता है ? कौनसे शत्रु हैं ? वे कैसे आक्रमण करते हैं ?

११ रथ, घोडे, सारथी, और लगाम कहां और कौन है, वे क्या कार्य करते हैं ? इससे संयमका उपदेश मिलता है वह किस तरह ? राष्ट्ररूपी रथका वर्णन करो। इसके घोडे सारथी आदि कौन हैं ?

१२ शरीरकी राष्ट्रके साथ तुलना करो।

१३ सप्त ऋषियोंका आश्रम कहां है ? सात ऋषि वहां कौन हैं, वे क्या करते हैं ? इस उपमासे कौनसा बोध दिया है ?

१४ आश्रमकी सात नदियां कैसी बहती हैं इसका वर्णन करो। यहां रक्षक वीर कौन हैं ? वे कितने हैं ?

१५ यहां दैवी रचना कैसी हुई है ? कौन देव कहां रहे हैं ? अयोध्या और द्वारोंवाली नगरी कौनसी है ? वह कैसी है ? कौन रक्षक वहां है ?

१६ यहां देव किस द्वारसे आते हैं ? कहां रहते हैं, वहां वे क्या कार्य करते हैं ?

१७ पृष्ठवंश और अष्टचक्रोंके स्थान बताओ और इनके महत्त्वका वर्णन करो।

१८ इन देवताओंसे मनुष्य किस तरह लाभ प्राप्त कर सकता है ? अनुष्ठानकी विधि बताओ ? लाभ प्राप्त करनेका मार्ग बताओ।

१९ मैं कौन हूं ? मेरी शक्ति क्या है ?

२० मक्खियोंका राजा कौन है और मधुमक्खियां कौनसी हैं ? इससे क्या बताया है ?

२१ अपना स्वराज्य कौनसा है ? इस शासनसे राज्यशासन किस तरह सिद्ध होता है उसका वर्णन करो।

ले जानेवाला, (प्रथमः) जो प्रथम स्थानमें रहनेयोग्य है, (विश्व-शुच्) सबमें शुद्ध, सबका प्रकाशक, (अं सुरन्ने) दुष्ट आततायियोंका नाश करनेवाला, (जात-वेदः) जिससे वेद प्रकट होते है, जिससे ज्ञान फैलता है, जो ज्ञानका प्रचार करता है, (परि ज्मा) अनुयायियोंमें चारों ओर घूमनेवाला, घूम घूमकर चारों ओर जाकर अनुयायियोंकी परिस्थिति देखनेवाला, (कविः) ज्ञानी दूरदर्शी, विद्वान्, अतीन्द्रिय विषयोंका ज्ञाता, (गृहपतिः) अपने घरका पालन करनेवाला, गृहरक्षक, (युवा) तरुण, जो वृद्ध अतएव कार्य करनेमें असमर्थ नहीं हुआ है, (पञ्च-चर्षणिः) पांचो जातियोंके मनुष्योंका हित करनेवाला, जो (अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार) गाढ अन्धकारमें पडे लोगोंको ज्ञानका प्रकाश दिखाता है, यह जिसके अन्दर शक्तिया हैं, (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः शर्मन्) जिसकी संमतिके अनुसार चलनेवालोंको निःसंदेह सुख ही प्राप्त होता है। (विश्वे जनासः यं उपतस्थु) सब लोग कठिन प्रसंगके समय जिसके पास जाते हैं और जो शुभसंमति प्रदान करके उनका योग्य मार्गदर्शन करता है, जो (विशां दुरोणे अधायि) जो प्रजाजनोंके घरमें जाता है और वहां आदरका स्थान पाता है। इस तरहके शुभगुणोंसे जो युक्त होगा वह नेता, अग्रणी, प्रमुख, अध्यक्ष होने योग्य है। पाठक इन गुणोंका मनन करें और ऐसे गुण जिसमे होंगे उसीको अध्यक्ष बनाएं।

ये गुण प्रायः ऊपर दिये मंत्रोंमें क्रमशः आये है। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषको ही अपना नेता बनाना उचित है। इसके विपरीत जो होगा वह नेता बनने अयोग्य है।

राष्ट्रकी तैयारी

६८०।१ **बृहत् राष्ट्रं इन्वति—** बडा राष्ट्र प्रसन्नता देता है।

६८०।४ **इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्—** इन्द्र हमारे लिये विस्तृत स्थान बनावे। हमारा राष्ट्र विस्तृत करे।

९१४ **त्रयोदश भौवनाः पञ्चमानवाः—** हमारे राष्ट्रमें तेरह प्रांत हैं और पांच जातियां है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पाच प्रकारके लोग हमारे राष्ट्रमें हैं, हमारे राष्ट्रमें तेरह भुवन है, तेरह प्रांत है। राष्ट्रके तेरह विभाग है।

'बृहत् राष्ट्रं' बडा राष्ट्र ये शब्द अन्य छोटे छोटे राष्ट्रोंका भी बोध कराते हैं। अर्थात् बडे और छोटे राष्ट्र होते हैं। दाशराज्ञयुद्ध इस वसिष्ठके मंत्रोंमें ही पाठक देखेंगे। सूक्त ३३ और ८३ देखो। यहां दश राजाओंके संघका सुदासके साथ युद्ध हुआ और इसमें सुदासका विजय हुआ। अर्थात् यहां दश छोटे छोटे राष्ट्र थे और उनकी अपेक्षासे सुदासका राष्ट्र बडा था। अनेक राष्ट्रोंकी संघटना होना, उनके संमिलित सैन्यसे चढाई होनी और दश राजाओंके संघका पराभव होना यह वर्णन इन सूक्तोंमें है। इससे सिद्ध है कि राष्ट्र छोटे भी होते थे और बडे भी होते थे। सुदास राजा भारतीयोंका था, वह निर्बल था, क्योंकि भारतियोंमें आपस की फूट थी और छोटी छोटी दलबंदी भी थी। इन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, वसिष्ठने राष्ट्रीय संघटना भारतियोंकी बनायी, और वे प्रबल बने और दिग्विजय करने लगे। पुरोहित लोग राष्ट्रीय संघटनाका कार्य करते थे।

यह पुरोहितका कार्य है, वसिष्ठके अथर्ववेदके मंत्रोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है—

९०२ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनका क्षात्रबल मैं तीक्ष्ण बनाता हूं, अक्षय बल उनका मैं निर्माण करता हूं।

९०३ इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी बना देता हूं। इनका ओज-बल और वीर्य मैं बढाता हूं। इनके शत्रुओंके बाहुओंको मैं काटता हूं।

९०४ इनके शत्रु नीचे गिर जाय, मैं ज्ञानसे अपने लोगोंको उन्नत करता हूं और शत्रुओंको क्षीण करता हूं।

९०५ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनके शस्त्र मैं तीक्ष्ण बनाता हूं।

९०६ इनके शस्त्र तीक्ष्ण करता हूं, इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे समर्थ बनाता हूं। इनका क्षात्र तेज कभी क्षीण नहीं होगा।

९०७ अपने अपने ध्वज लो, उत्साहमय हर्षसे शत्रुपर चढाई करो। अपनी सेना शत्रुपर आक्रमण करे।

९०८ चलो, चढाई करो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारे बाहुओंमें बडा बल है। तुम्हारे शत्रुओंका बल क्षीण हुआ है। इसलिये उनको मारो।

९०९ शत्रुपर टूट पडो, आगे बढो, शत्रुके सैनिकोंमेंसे मुख्य मुख्य वीरको मारो। उनमेंसे कोई न बचे।

यह सेना तैयार करना, उनके शस्त्रास्त्र तैयार करना, शत्रुके शस्त्रोंसे अपने शस्त्र अधिक प्रभावी करना, शत्रुपर आक्रमण

किस समय कैसा करना, इसका निश्चय करना आदि ये सब कार्य पुरोहितके है। राजा युद्ध करेगा, सैनिक भी युद्ध करेंगे, परंतु सब तैयारी प्रथम पुरोहित करेगा। यह वैदिक व्यवस्था यहा वसिष्ठके मंत्रोंमें दीखती है। इस तरह राष्ट्र निर्माणका कार्य पुरोहितका है, राष्ट्रमें सेनाको तैयार करना, उसको उत्साहसे भर देना, शत्रुपर करनेके आक्रमणोंकी सब तैयारी करना, यह सब पुरोहितके करनेका कार्य है। रामेश्वर जानेवाले यात्री भी धनुष्यबाण और दक्षिणा पुरोहितको ही देते हैं। गणेश पुराणमें काशीराजाके पुरोहित श्रीगणेशने ही सेनाकी तैयारी की थी और जिससे उसको विजय मिला। ये कार्य पुरोहितके हैं।

राष्ट्रका ध्वज

३१२ **जनाय केतुं दधात—** लोगोंके लिये ध्वज दो।

५६४ **दिवः दुहितुः उषसः जायमानः केतुः श्रिये अचेति—** द्युकी पुत्री उषासे उत्पन्न होनेवाला ध्वज शोभाके लिये प्रकाशता है।

६२८ **पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्, प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्—** पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है, पश्चिम दिशाके प्रासादोंपर प्रकाश पड रहा है।

उषाका यह रंग गेरवा, लालसा होता है। उषाका ध्वज इस लाल या गेरवे वर्णका है। 'उषस केतुः' गेरवा है इसमें संदेह नहीं है। यही लोगोंको दिया ध्वज है।

९०७ **केतुमन्तः उदीरताम्।**

अपना अपना ध्वज लेकर अपनी सेना चले, शत्रुपर आक्रमण करे। अन्यत्र भी वेदमें ध्वजका रंग अग्निज्वाला जैसा अथवा उदय होनेवाले सूर्य प्रकाश जैसा वर्णन किया है। यह रंग निःसंदेह भगवा है। इस ध्वजको लेकर वैदिक धर्मी राजाओंकी सेना शत्रुपर चढाई करती थी और विजय प्राप्त करती थी। ध्वजकी ओर देखनेसे सेनाका उत्साह बढता है और युद्धमें शक्ति बढ जाती है। इसलिये राष्ट्रके पास अपना ध्वज रहना चाहिये। वेदमें '**सूर्यकेतवः**' कहा है। गेरवे रंगपर सूर्यका चिन्ह आर्योंके वैदिक ध्वजपर रहता था।

राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य

६६ **असुरस्य पुंसः कृष्टीनां अनुमाद्यस्य सम्राजः तवसः कृतानि विवक्मि—** बलवान् पुरुषार्थी प्रजाओंके प्रिय सम्राट्के बलसे किये पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं।

६७ **कविं केतुं अद्रेः धासिं भानुं शं राज्यं (आ विवासे); पुरंदरस्य पूर्व्या महानि व्रतानि गीर्भिः आविवासे—** ज्ञानी, ज्ञान प्रसारक, कीलोंको अपने राज्यमें धारण करनेवाले, तेजस्वी, प्रजाको सुख देनेके लिये राज्य करनेवाले, राजाकी मैं प्रशंसा करता हूं। इस शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाले सम्राट्के अपूर्व महान पराक्रमोंका वर्णन मैं करता हूं।

४१४।१ **दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति—** दिव्य जन्मवाले सम्राट्के साम्राज्यसे वह सचेत होता है। मनुष्य उत्तेजित होता है।

४४४। १ **हे वास्तोष्पते! शग्मया, रण्वया, गातुमत्या संसदा सक्षीमहि—** हे भूपते! सुखदायी रमणीय प्रगतिसाधक परिषदमें हम बैठे। राजाके लिये ऐसी सभा होनी चाहिये।

६६० **सम्राट् स्वराट्, महान्तौ महावसू वृषणा ओजः बलं संदधुः—** सम्राट् और स्वराट् ये दोनों महा धनवान बलवान हैं वे शक्ति और बलका धारण करते हैं।

७४९ **दुःशंसः मा नः ईशत—** दुष्टका शासन हमपर न हो।

'राज्य' का अधिपति 'राजा', 'स्वराज्य' का अधिपति 'स्वराट्'; और 'साम्राज्य' का अधिपति 'सम्राट्' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त 'भौज्य, वैराज्य, महाराज्य, जानराज्य' ऐसे अनेक प्रकारके राज्यशासनोंका नाम वैदिक सारस्वतमें है, पर उनका उल्लेख वसिष्ठके मंत्रोंमें नहीं है। सबसे प्रथम विचार और मनन करनेयोग्य वसिष्ठका मंत्र है वह '**मा नो दुःशंस ईशत**' (७४९) हमारे ऊपर दुष्टका शासन न हो यह है। '**मा वः स्तेन ईशत, मा अघशंसः**' (वा० यजु १।१) हमारे ऊपर चोर और पापीका राज्य न हो, यह यजुर्वेदका कहना है। वही बात वसिष्ठके मंत्रमें है। चोर, पापी दुष्टका शासन कोई न माने, ऐसे शासनमें कोई न रहे। यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहां दिया है।

६६० **स्वराट् सम्राट् महान्तौ महावसू वृषणा ओजः बलं संदधुः—** स्वराज्यका अधिपति स्वराट्, और साम्राज्यका शासक सम्राट्, ये दोनों बडे हैं और (महा-वसू) बडे धनवान हैं, अतः वे बडे (वृषणा) बलवान हैं, वीर्यवान्

और पराक्रमी तथा समर्थ है। वे ओज और बल धारण करते हैं। यहां सम्राट् और स्वराट्को 'महावसू' कहा है। इनके पास बडा धनकोश है। क्योंकि राजा धनकोशसे राज्य कर सकता है। जिसका कोश खाली हुआ है वह राजा निर्बल है। राजाकी शक्ति बल और सामर्थ्य उसके धनकोशपर है यह बात यहां कही है और वह सत्य है।

राजसभा

राजसभा (शग्मा) सुखदायी है, प्रजाके लिये हितकर है, (रण्वा) प्रजाको रममाण करनेवाली है, प्रजाका राज्य-शासनपर विश्वास प्रजाकी प्रतिनिधिसभासे रह सकता है। (गातुमती) प्रजाकी प्रगति करनेवाली सभा होती है। इसलिये राजाको सलाह देनेके लिये प्रजाके प्रतिनिधियोंकी एक संसद होनी चाहिये। राष्ट्रका धनकोश भरपूर होना चाहिये और प्रजाके प्रतिनिधियोंकी एक संसद होनी चाहिये। ऐसा राज्य-शासन प्रजाको सुखदायी, प्रजाका आनंद बढानेवाला और प्रजाकी उन्नति करनेवाला होता है। (४४४)

प्रजाकी अनुमति

(९६) **सम्राट् असुरः पुमान्, कृष्टीनां अनुमाद्यः—** सम्राट् बलवान्, नवजीवन अपने राष्ट्रको देनेवाला, पुरुषार्थी और प्रजाओं द्वारा अनुमोदित हो। यहां '**कृष्टीनां अनुमाद्य**' ये पद बडे महत्त्वके हैं। सम्राट्को राजगद्दीपर बैठनेके लिये प्रजाजनोंकी अनुकूल संमति चाहिये। तभी कोई राजा राज्यपर रह सकता है।

इस तरहके प्रजाकी संमतिसे राज्यपर आये हुए राजाके (**तवसः कृतानि विवक्मि**) सामर्थ्यसे किये हुए पराक्रमके कृत्य वर्णनके योग्य होते हैं। उनका वर्णन करना योग्य हैं। इनके वर्णनसे दूसरोंको वैसे सुयोग्य कार्य करनेका प्रोत्साहन मिलता है।

राजा (कविः) ज्ञानी दूरदर्शी, (केतुः) ज्ञान प्रसारका ध्वज जैसा दर्शक प्रतीक, (अद्रेः धासि.) कीलोंको अपने राज्यके संरक्षणके लिये धारण करनेवाला, (भानुं) तेजस्वी (शं राज्ये) प्रजाके कल्याणके लिये राज्य करनेवाला हो। इस (पुरंदरः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले राजाके बडे बडे पुरुषार्थोंके काव्योंका गान करना चाहिये। इन पराक्रमोंको सुनकर दूसरोंको उत्तेजना मिलेगी कि हम भी ऐसा राज्य शासन करें और ऐसा ही यश प्राप्त करें।

राजा प्रजाका पालनकर्ता

६१ **कृष्टीनां पतिं रयीणां रथ्यं वैश्वानरं वावशानाः हरितः सचन्ते—** कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी धनसे पूर्ण रथमें बैठनेवाले सब लोगोंके नेताको शिक्षित घोडिया इधर लाती हैं, उसके रथको चलाती हैं। राजा रथमें बैठता है, उस रथमें ऐश्वर्य भरपूर भरा रहता है, उसके रथको उत्तम शिक्षित घोडिया चलाती हैं।

२४१।२ **अनेनाः मायी—** श्रेष्ठ देव पापरहित है और कुशल है। सामर्थ्यवान् है।

२६५ **सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं—** सबका राजा अप्रतिम उत्साहवाला हो तो उसकी स्तुति होगी।

३१६ **सहस्रचक्षाः उग्रः—** हजारों नेत्रोंसे देखनेवाला वीर राजा है।

३१७ **राष्ट्रानां राजा पेशः अस्मै अनुत्तं क्षत्रं विश्वायुः—** राष्ट्रोंकी शोभा राजा है, इस राजाके लिये क्षात्र तेज प्राप्त हो और पूर्ण आयु मिले। उत्तम बलवान् बनकर दीर्घ जीवन प्राप्त करे।

३४८ **इनः अदब्धः पद-वीः—**शासक शत्रुसे न दबकर योग्यको योग्यपदपर रखता है।

३७३ **नियुत्वान् विश्पती इव विशां स्वस्तये वीरौ आ इयाते—** जैसे घोडे जोतकर प्रजापालक राजा लोग जाते हैं, उस तरह प्रजाजनोंके कल्याणके लिये सभामें जाते है। सभाकी संमतिसे राज्यशासन चलाते हैं।

५३७ **ता राजाना सुक्षितीः तर्पयेथां—** वे राजा उत्तम रीतिसे प्रजाकी तृप्ति करते हैं। वे अपने पदपर स्थिर रहते हैं।

५६३ **प्रजापाति धिष्ण्यौ—** राजाके पालक बुद्धिमान हों। निर्बुद्ध न हों।

६१८ **जनानां नृपातारः अवृकासः प्रयवुः—** मनुष्योंके पालक अकुटिलतासे सीधे मार्गसे अपनी प्रजाको प्रगति करते हैं।

जनानां नृपातारः स्वेन शवसा शुशुवुः— वे मानवोंके पालक अपने बलसे बढते हैं।

जनानां नृपातारः सुक्षितिं क्षियन्ति— वे मनुष्योंके पालक अपनी प्रजाका निवास कराते हैं।

७०२ **सुपारक्षत्रः अस्य सतः राजा—** कष्टोंसे प्रजाको पार ले जानेमें राजा उत्तम दक्ष हो।

८६७ **क्रतुमान् राजा अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्—** पुरुषार्थी राजा अपने बलसे सब कष्टोंके पार होता है।

८९० **राजा वृजन्यस्य धर्मा भुवत्—** राजा बलका धारक हो।

८९१ **मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः—** मनुष्योंका राजा धनोंका धनपति हो। राजाका कोश भरपूर भरा हो।

९३१ **वर्चसा मनुष्येषु राजा संबभूव—** तेजसे मानवोंमें राजा होता है। जो तेजस्वी है वही राजा होने योग्य है।

किसानोंका पालक

राजा केवल प्रजाका स्वामी नहीं है वह **"कृष्टीनां पतिः"** वह प्रजाजनोंका पालक है, विशेषतः कृषि करनेवालोंका प्रतिपाल करनेवाला है। क्षत्रिय अपने अधिकारके बलसे तथा वैश्य अपने धनके बलसे अपना पालन करनेमें समर्थ होते हैं। कृषक वर्ग ही निर्बल रहता है। इसलिये निर्बलोंका पालन करनेवाला राजा है ऐसा कहनेसे सब प्रजाका पालक वह है यह सिद्ध हुआ। यही राजाका कर्तव्य है। अधिकार चलाना यह राजाका कर्तव्य नहीं है, प्रत्युत उत्तम प्रकारसे प्रजाका पालन करना और उनमें भी कृषकोंका पालन करना राजाका मुख्य कर्तव्य है।

' रयीणां रथ्यः ' वह राजा धनोंके रथपर बैठता है, उसका अधिकार नाना प्रकारके धनोंपर रहता है। प्रजाका पालन धनसे ही हो सकता है। इसलिये राजाके पास धन-कोश भरपूर होना ही चाहिये। इसकी सूचना इस पदसे मिलती है। **' वैश्वा-नरः '** यह राजा सब राष्ट्रका नेता, अगुआ, अग्रगामी, अग्रणी है, प्रजाका योग्य रीतिसे संचालन करनेवाला यह है।

यह प्रजापालक राजा **(अनेनाः=अन्+एनाः)** निष्पाप रहना चाहिये। किसी तरहका पापाचरण उसके जीवनमें उससे न हो। राजा राष्ट्रमें आदर्श पुरुष है इसलिये उससे पाप कदापि होना नहीं चाहिये। **(मायी)** प्रवीण, कुशल, कर्म करनेमें कुशल राजा हो। किसी तरह अपने प्रजापालन कर्ममें न्यून न हो। **(सत्रा-राजा)** साथ साथ सब प्रजाजनोंको लेकर प्रकाशित होनेवाला राजा हो। प्रजाजनोंके साथ मिलकर रहे, अपने आपको पृथक् न समझे। **(अनुत्तमन्युः)** जिसका उत्साह अत्यंत हो, जिसके पास निराशा कभी आती न हो। यहां मन्यु ' का अर्थ ' उत्साह ' है। इसका दूसरा अर्थ, ' क्रोध ' भी है। राजाका क्रोध और प्रसाद विफल न होनेवाला हो। **(उग्रः)** राजा उग्र हो, निस्तेज न हो, अजागलके स्तन जैसा निरर्थक न हो। **(सहस्राक्षः)** हजारों आंखोंसे देखनेवाला हो। ' चारैः पश्यन्ति राजानः ' गुप्त चरोंसे राजा सबका निरीक्षण करता है। गुप्तचर विभाग राजाके पास उत्तम कार्यक्षम हो। जो अपने देशके अन्दरकी सब बातें जाने और परदेशमें क्या चल रहा है यह सब यथावत् जाने। यह ज्ञान प्राप्त करनेमें राजा कसर न करे।

३१७ **राजा राष्ट्रानां पेशः—** राजा राष्ट्रोंका सौंदर्य है, राष्ट्रको सुंदर रूप देनेवाला राजा हो। राजा उत्तम रहा और उसका शासनप्रबंध अच्छा रहा तो राष्ट्र तेजस्वी होता है। इसके विपरीत शासनप्रबंध ढीला रहा तो प्रबल राष्ट्र भी क्षीण और दुर्बल होता है। **(अस्मै अनुत्तं क्षत्रं)** राजाके पास उत्तम क्षत्रियोंका सामर्थ्य हो, उत्तम सेना हो और उसमें उत्तम वीर पुरुष हों।

३४८ **इनः अ-दब्धः**- राजा किसीके दबावसे न दब जानेवाला हो। किसीके दबावसे न दबे। सत्य पालन करे और दुष्टोंके दबावमें कभी न फंसे।

राजसभामें राजा जाय

राजाके लिये एक सभा हो, उस सभामें राजा जाय और उस सभाकी अनुमतिसे राज्यशासनका व्यवहार करता रहे। (३७३ **विशां स्वस्तये बीरीट आ इयाते)** प्रजाजनोंका कल्याण करनेके लिये राजा राजसभामें जाय और उस सभाके सदस्योंसे विचार विनिमय करे। **' बिरीट '** का अर्थ ' मेला, अनेक लोगोंकी जहां उपस्थिति होती है वह स्थान, सभा, सार्वजनिक परिषद ' यह है।

राजा बुद्धिमान हो

५६३ **प्रजापती धिष्ण्यौ—** राजालोग बुद्धिमान हों।

निर्बुद्ध न हों। बुद्धिसे जो राज्य चलाया जाता है, वही अच्छा हितकारी होता है। जो राजा निर्बुद्ध, अनाडी, दुर्व्यसनी, पापी हो तो राज्याधिकारी होनेके लिये ही अयोग्य है। इसलिये कहते हैं कि— (६१८ **जनानां नृपातारः अवृकासः**) मनुष्योंका पालन करनेके कार्यमें नियुक्त हुए राजपुरुष 'अ-वृक' अर्थात् क्रोधी न हो, कुटिल न हो, दुष्ट न हों। सरल स्वभाव-वाले हों। वे (**स्वेन शवसा शूशुवुः**) अपने निज बलसे बढते रहें, दूसरेके हाथसे पानी पीनेवाले न हों। परावलंबी न हों। (**नृपातारः सुक्षितिं क्षियन्ति**) मनुष्योंका पालन करनेवाले मनुष्योंका सुखपूर्वक निवास करानेका प्रयत्न करें। प्रजाजनोंका जीवन सुधारनेका यत्न करें। प्रजाजनोंका रहन सहन सुधर जाय, उनकी स्थिति अधिक अच्छी हो जाय ऐसा प्रयत्न करें।

७०१ **राजा सुपारक्षत्रः**— प्रजाका पालन करनेवाला प्रजाको दुःखोंसे पार ले जानेके कार्य दक्षतासे करनेवाला हो। प्रजा हितका प्रत्येक कार्य दक्षतासे प्रमादरहित रीतिसे करे। (८६७ **क्रतुमान् राजा अमेन विश्वा दुरिता घनि-घ्नत्**) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला राजा अपने प्रयत्नके बलसे सब आपत्तियां दूर कर सकता है। प्रयत्न करनेसे सब कुछ होता है। (८९० **राजा वृजन्यस्य धर्मा भुवत्**) राजा बलका धारण पोषण करनेवाला होता है। राजाके रहनेसे राष्ट्रमें बल रहता है और वही राजा दुष्ट हुआ तो उसके कुप्र-बंधसे बलवान् राष्ट्र भी निर्बल हो जाता है। (८९१ **मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः**) मानवोंका राजा नाना प्रकारके धनोंका स्वामी होता है। राजाके पास परिपूर्ण भरा हुआ धन-कोश रहना चाहिये। धन ही राजाका बल है। (९३२ **वर्चसा मनुष्येषु राजा संबभूव**) तेजस्वितासे मनुष्योंमें राजा होता है। अर्थात् राजामें तेजस्विता चाहिये। निस्तेज मनुष्य राजगद्दीपर शोभा नहीं दे सकता। इसलिये तेजस्वी प्रतापी पुरुषको ही राजाके स्थानपर रखना चाहिये।

९३६ **इमं क्षत्रियं वर्धय**-इस क्षत्रियको बढाओ। (**इमं विशां एक वृषं कृणु**) इस क्षत्रियको अद्वितीय बलवान कर। (९३७ **अयं राजा क्षत्रियाणां वर्ष्म अस्तु**) यह राजा क्षत्रियोंसे सबसे श्रेष्ठ हो जाय। बलवान् होनेसे यह राजा सबमें श्रेष्ठ हो। सब अन्य राजा लोग इस राजाके साम्रा-ज्यमें रहें। इतनी इस राजाकी शक्ति बढे। (९३८ **अयं राजा धनानां धनपतिः, विशां विश्पतिः अस्तु**) यह राजा सब प्रकारके धनोंका स्वामी हो और सब प्रजाओंका उत्तम पालक हो। (**अस्य शत्रुं अवर्चसं कृणुहि**) इसके शत्रुको निस्तेज करो।

९३९ **अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्**— यह राजा प्रभुको प्रिय हो। इसका आचरण ऐसा उत्तम हो कि जिससे इसपर ईश्वर प्रसन्न हो जाय। (९४० **येन जयन्ति, न पराजयन्ते**) जिससे राजा विजयी होता है और कभी पराभव नहीं होता, इसका ज्ञान यह है, (**मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्**) मानवोंमें, राजाओंमें, क्षत्रियोंमें इसको उत्तम कर दिया है, इसलिये इसका कभी पराभव नहीं होगा और विश्वमें यह विजयी होगा।

९४१ **हे राजन्! त्वं उत्तरः**— हे राजा! तूं अधिक श्रेष्ठ बन, सब मानवों और राजाओंमें तुम्हारे जैसा कोई न हो। सबसे ऊंचा स्थान तुम्हारे लिये ही प्राप्त हो। (**ते सपत्नाः प्रतिशत्रवः अधरे**) तेरे सब शत्रु नीचे हों, तुम्हारी योग्यताको वे न प्राप्त हों। इतनी तुम्हारी योग्यता श्रेष्ठ हो जाय।

९४२ **सिंह प्रतीकः सर्वा दिशः**— सिंहके समान सब दिशाओंमें प्रभावी बन, (**व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अव बाधस्व**) व्याघ्रके समान शत्रुओंको पराजित कर। (**एक वृषः जिगीवान**) अद्वितीय बलवान् होकर तू सर्वत्र विजयी और यशस्वी बन।

(९४५) (**वज्री**) शस्त्रधारी, (**वृषभः**) बलवान्, (**तुराषाट्**) त्वरासे शत्रुको दबानेवाला (शुष्मी) सामर्थ्य-वान् (राजा) ऐसा राजा हो।

इस तरह प्रजापालक राजाके गुणोंका वर्णन वसिष्ठ मंत्रोंमें है। पाठक इस दृष्टीसे इन मंत्रोंका मनन करें और राज्यशासन विषयक बोध लें। ये मंत्र राज्यशासन विषयक उत्तमोत्तम बोध दे रहे हैं। वसिष्ठ ऋषिने इन मंत्रोंमें आदर्श राजाका वर्णन किया है। वह आज भी मननीय है।

दूतकर्म

३७१ **अग्निभिः सजोषा अग्निं देवं दूतं कृणुध्वम्**- तेजस्वी पुरुषोंके साथ रहनेवाले तेजस्वी दिव्य पुरुषको अपना दूत बनाओ। राजदूत वह बनाया जावे कि जो स्वयं नेता हो और अग्निके समान तेजस्वी और मार्गदर्शक हो। तथा जो—

३७।२ मर्त्येषु निध्रुविः ऋतावा पावकः तपुर्मूर्धा अध्वरः— जो मनुष्योंमें स्थिर रहता है, तथा जो सत्यनिष्ठ, पवित्र, तेजस्वी, घीसे पका अन्न खानेवाला तथा हिंसा छल कपट आदि दोषोंसे रहित हो। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषको राजदूत बनाना योग्य है।

९९ मानुषासः अजिरं दूत्याय ईळते— मनुष्य सदा प्रगतिशील पुरुषको ही दूतकर्मके लिये प्रशंसित करते हैं।

देवोंमें अग्निको दूतकर्मके लिये प्रशंसनीय माना है। यज्ञकर्ताका दूत होकर देवोंके राज्यमें जाता है और देवोंको बुलाकर लाता है। दूत अग्निके समान तेजस्वी, उत्साही, प्रकाशमान, अग्रणी, कार्य (अग्र-नी) अन्ततक, सिद्ध होनेतक संपादन करनेवाला, बीचमें ही न छोडनेवाला हो। ये अग्निके गुण हैं। ये गुण राजदूतमें होने चाहिये। परराष्ट्रमें अपना दूत अग्नि समान प्रकाशता रहे। नीतिमें (निध्रुविः) स्थिर, (ऋतावा) सत्यनिष्ठ, (पावकः) शुद्ध, पवित्र, (तपुः मूर्धा) तेजस्वी मुखवाला (अ-ध्वरः) हिंसा न करनेवाला अथवा (अध्व-रः) योग्य मार्ग बतानेवाला (अजिरः) जो निर्बल नहीं है। ऐसा दूत हो।

३।७४ नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत— हमारे इस प्रवासी दूतका कथन सुनो।

६९९ वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति— वरुणके गुप्त दूत द्यावा पृथिवीका निरीक्षण करते हैं।

हमारे दूतकी बातें जहां वह जाय वहांके सदस्य सुनें। ऐसा कभी न हो कि हमारा दूत तो राजसभामें जाय और वहां उसका कोई न सुने। हमारा दूत इतना तेजस्वी और विद्वान हो कि सब लोग उसकी बातें सुनें और उसका कहना मानें।

(स्पशः) गुप्तचर, राज्यके चार, चारों ओर भ्रमण करें उनको किसी स्थानपर प्रतिबंध न हो। वे ऐसी युक्तिसे जहां जाना है वहां पहुंचे कि किसीको पता तक न लगे। ये (उभे रोदसी परिपश्यन्ति) दोनों लोकोंको देखते हैं। उनको सब दृश्य प्रत्यक्ष जैसे होने चाहिये क्योंकि उनकी गति सर्वत्र रहनी चाहिये। सबमें वरिष्ठ और श्रेष्ठ देव वरुण है। इसके ये गुप्तचर सब विश्वमें जाते हैं और सबके कार्य देखते हैं। वैसे हमारे राजाके दूत हों, गुप्तचर हों, जो सब राष्ट्रमें तथा बाहरकी सब बातें देखें, जानें, और राजाके पास उस ज्ञानको पहुंचा दें।

नदीपार

१५०।१ इन्द्रः अर्णांसि गाधा सुपारा अकृणोत्— इन्द्रने अगाध जलोंको सुखसे पार करनेयोग्य बनाया। यही राजाका राष्ट्रमें कर्तव्य है। लोगोंके जानेआनेके मार्ग नदीके कारण न रुकें ऐसा प्रबंध करना चाहिये

३५२ सिन्धुमाता सरस्वती सुधारा सुदुघा, स्वेन पयसा पीप्यानाः यशसा वावशाना साकं अभि आ सुष्वयन्त— सिन्धु माता सरस्वती उत्तम धारासे युक्त, उत्तम दूध देनेवाली, अपने जलसे बढनेवाली, अन्नको बढानेवाली साथ साथ बढती जाय। यह नदी गौका दूध बढावे परंतु मार्गमें रुकावट न करे।

५०९।३ प्रवाजे नद्यः गाधं अस्ति— निम्न प्रदेशमें नदी गहरी होती है। इसलिये उसको पार करनेका यत्न करना चाहिये।

५०९।४ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षन्— इस गहरी नदीके पार ये वीर हमें ले जांय। हम गहरी नदीके भी पार जायगे।

नदीका जल तो जैसाका वैसा ही रहेगा, परंतु जाने आनेके लिये नदीके ऊपरसे मार्ग बनाना चाहिये। नौकाओंकी पंक्ति रखकर उस परसे गहरी नदीके पार जा सकते हैं, बडे बडे वृक्षोंके काष्ठोंसे सेतु बनकर पार होनेके लिये मार्ग बनाया जा सकता है। इस पारसे उस पारतक बडा रस्सा अथवा तारोंका रस्सा रखकर उसपरसे पार हो सकते हैं। पत्थरोंके सेतु तथा लोहेके सेतु किये जा सकते हैं। तात्पर्य व्यापार व्यवहारकी उन्नति होनेके लिये नदियोंके पार जानेके मार्ग अक्षुण्ण होने चाहिये।

नौकासे समुद्र पार होना

७०६ नावं आरुहाव, समुद्रं मध्ये प्रेरयाव, अपां स्नुभिः अधिचराव, शुभे कं प्रेंखे प्रेंखयावहै— नौकापर चढें, उसे समुद्रमें चलावें, जलोंके बीचमें अन्य नौकाओंके साथ चले तब आनन्दके लिये झूलेपर चढनेके समान आनंद प्राप्त करेंगे।

७०७ वरुणः वसिष्ठं नावि आ अधात्— वरुणने वसिष्ठको नौकापर चढाया (सु अपाः महोभिः ऋषिं

चकार) उत्तम कर्म करनेवालेने अपनी शक्तियोंसे उस ऋषिको पार किया।

इस तरह नौकाओंका समुद्रमें जाना आना, नदीपार करना, समुद्रकी यात्रा करना आदि इन मन्त्रोंमें लिखा है। यह नौका विहार सब जानते थे इतना सुप्रसिद्ध था, सबको सुविदित था। इसलिये '**नावा इव सिंधुं दुरितात्यग्निः।**' ऐसी उपमाएं दीं गयीं हैं। दुःखों, कष्टों, पापों और आपत्तियोंसे पार होनेके लिये 'नौकासे नदीपार या समुद्रपार' होनेकी उपमा दी है। उपमा उसकी दी जाती है कि जो सबको सुविदित हो। इसलिये छोटी और बडी नौकाओंका वर्णन सिद्ध करता है कि यह व्यवसाय सुविदित था। अश्विदेवोंने भुज्युको और उसकी सेनाको भी समुद्रपार किया था। यह नौका बडी ही होगी।

शिल्पी

१८५ त्वष्टा सु-द्रुं नेमिं— सुतार उत्तम लकडीसे चक्रकी नेमी बनाता है।

३५६ ऋभुक्षणाः सुशिप्राः वाजाः— शिल्पियोंमें रहनेवाले बल अन्न तथा धन सुरक्षित होते है।

३५७ ऋभुक्षणः स्वर्दृशः अमृक्तं रत्नं धत्थ— कारीगरोंको आश्रय देनेवाले, आत्मोन्नति करनेवाले, चुराया जानेवाला धन न दें।

३५९ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः— राजा अपने यशसे शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला हो।

४१२ ऋभुभिः ऋभुः स्याम— शिल्पीयोंके साथ रहकर हम कुशल शिल्पी बनेंगे।

५८१ सुमन्मा कारुः उषसां अग्रे बुधानः— मननशील शिल्पी उषःकालके पूर्व उठे। और अपना कार्य प्रारंभ करे।

६६१।३ कारवः उभयस्य वस्वः ईशानाः— कारीगर दोनों धनोंके स्वामी होते हैं।

(सु-द्रुं नेमिं) उत्तम लकडीकी ही चक्रको नेमि बनानी चाहिये, नहीं तो वह टिकेगी नहीं। शिल्पीयोंके प्रयत्नसे अन्न, बल तथा धन निर्माण होते हैं। राजा (ऋभु-क्षाः) शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला हो। जो शिल्पियोके साथ रहते हैं वे शिल्पी बनते हैं। इस तरह राष्ट्रमें शिल्पकी वृद्धी करनी चाहिये। शिल्पियोंके साथ धन रहता है। इसलिये शिल्पीयोंका राष्ट्रमें सन्मान हो।

३१ मानुषेषु कारू विप्रौ जातवेदसौ मन्ये— मनुष्योंमें जो कारीगर ज्ञानी और बुद्धिमान हैं उनकी मैं मान्यता करता हूं। वे अपने कर्मको उत्तमसे उत्तम बनावें, वे अपना कर्म छल कपट रहित करें।

१९९।१ कीरिः अवसे ईशानं जुहाव— कारीगर अपनी सुरक्षाके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करता है।

(मानुषेषु कारू विप्रौ) मानवोंमें शिल्पी ज्ञानी हों, ज्ञान और शिल्प एक स्थानपर रहना चाहिये। ये शिल्पी (जातवेदसौ-जात-धनौ) धन उत्पन्न करनेवाले हैं, शिल्पसे ही धन निर्माण होता है। इसलिये राष्ट्रमें शिल्पी अधिक होने चाहिये।

इन्द्रको (३५९ इन्द्रः ऋभु-क्षाः) शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला कहा है। इन्द्र देवोंका राजा है, वह शिल्पियोंको आश्रय देता है, सन्मानसे उनके शिल्पोंको उत्तेजना देता है, उस तरह यहाके राजाओंको भी अपने राज्यमे शिल्पियोंको उत्तेजना मिले, शिल्पोकी वृद्धि हो ऐसा करना चाहिये। शिल्प ही धन है। शिल्पकी उत्तेजनाका अर्थ धनकी उत्तेजना है। मनुष्योंको धन चाहिये, इसलिये मनुष्योंको शिल्पोको उत्तेजना देनी चाहिये।

पापसे बचाव

१०४।१ महा दुरितानि साह्वान्— अपने महत्त्वसे पापोंको दूर कर।

१०४।३ स. अवद्यात् दुरितात् गृणतः मघोनः नः रक्षिषत्— वह प्रभु निंद्य पाप कर्मसे हम सब उपासकों और धनिकोंको बचावे।

१०७।३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तूं निन्दितोंसे हमें बचाओ।

११२ तानि अंहांसि अस्मान् अतिपर्षि— उन सब पापोंसे हम सबको बचाओ।

२४१।३ यत् अनृतं प्रतिचष्टे, द्विता अवसात्— जो पाप हमारे अन्दर दिखाई देगा, वह द्विधा होकर दूर किया जाय।

२८३।३ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये मैं धनका दान कदापि नहीं करूंगा।

३१९।२ तनूनां रप. विष्वक् वि युयोत— शरीरोंके पाप दूर हों।

१८१ नः अंहः अतिपर्षत्— हमारा पाप दूर हो।

४३३ आदित्यानां शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि तुरासः अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु— आदित्योंके कल्याणकारी कवचसे हम सुरक्षित हों और वे त्वरासे कार्य करनेवाले हमें निष्पाप और अदीन बनावें।

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप हमें भोगना न पडे।

५०३ उद्यन् अद्य अनागाः प्रवः— वह सूर्योदय होनेपर आज ही हमे निष्पाप करके घोषित करे।

५०३।३ वयं देवत्रा सत्यं— हम देवोंमें सत्यपालक करके प्रसिद्ध हों।

५१३ नः अनागसः प्रवोच— हमें निष्पाप घोषित कर।

५४१।४ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम नावा अपः इव— सत्यमार्गसे पापके पार होंगे जैसे नौकासे नदी पार होते हैं।

५४८ यामन् नः अंहः अतिपिप्रति— वीरोंका आगमन हमारा पाप दूर करे।

६७३।१ अर्यः अघानि मा अभि आतपन्ति— शत्रुके पाप मुझे कष्ट दे रहे हैं।

६७३।२ वनुषां अरातयः मा तपन्ति— घातक शत्रु मुझे ताप देते हैं।

६८०।२ अरज्जुभिः सेतुभिः सिनीथः— रज्जुरहित बंधनोंसे पापियोंको बांधते हैं।

६९३।१ नः पित्र्या द्रुग्धानि, वयं तनूभिः चकृम— हमारे पैत्रिक पाप हों अथवा अपने इस शरीरसे किये हों, वे सब दूर हों।

६९३।३ पशुतृपं तायुं— पशुको तृप्त करनेवाला पशु चोर (पापमें भी पुण्य करता है।) चोर किसीके पशुको चोरता है, यह पाप है, पर उस पशुको घास पानी देता है यह उसका उस पापमें पुण्य है।

६९३।४ दाम्नः वत्सं न, वसिष्ठं अवसृज—रस्सीसे बछडेको छोडनेके समान मुझ वसिष्ठको मुक्त करो।

६९५ मीळहुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि— मैं निष्पाप बनकर देवकी सेवा करूंगा।

७०३।१ यः आगः चकुषे चित् मृळयाति— ईश्वर पाप करनेवालेको भी सुख देता है।

७०३।१ वरुणे वयं अनागाः स्याम— वरुणमें हम निष्पाप हों।

७०९ यः नित्यः आपिः प्रियः सखा सन्, आगांसि कृणवत्, ते एनस्वन्तः मा भुजेम— जो प्रियमित्र होनेपर भी पाप करता है, वह तुम्हारा मित्र होनेसे उसे पापफल भोगना न पडे।

७१० वरुणः अस्मत् पाशं विमुमोचत्— वरुण हमसे पाश दूर करे।

७१५ दैव्ये जने यत् किंच मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि, अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्यजनसंबंधी जो द्रोह हमने किया है, न समझते हुए जो धर्मलोप हुआ हो, उस पापका भोग हमें न करना पडे।

७४५ न पापत्वाय, अभिशस्तये, नः निंदे, मा रीरधतं— पाप, विनाश, निन्दाके लिये हमें पराधीन न कर।

पाप कई प्रकारके होते हैं, एक व्यक्तिका किया हुआ पाप, दूसरा सामुदायिक रीतिसे किया हुआ, तीसरा अज्ञानसे हुआ चौथा जानबूझकर परिणामका विचार करके किया हुआ। ऐसे अनेक प्रकारके पाप हैं। इन सब पापोंको दूर करना चाहिये, इन सब पापोंसे अपना बचाव करना चाहिये। इसलिये कहा है-

१०४ अवद्यात् दुरितात् नः रक्षिषत्।
१०७ अभिशस्तेः अमुञ्च।
१११ अहांसि अस्मान् अतिपर्षि।
१८१ नः अंहः अतिपर्षत्।
५४८ नः अंहः अतिपिप्रति।

हमारा पापसे बचाव हो। हमसे पाप न हो। पापके दुष्परिणामको हम सहें और पापका नाश करें (**१०४ महा दुरितानि साह्वान्**) अपने महत्त्वसे, अपनी शक्तिसे हम पापोंको सहकर दूर करेंगे। पापोंके दुष्परिणामको सहना पडेगा, पर उस समय हम हिम्मत ऐसी धारण करेंगे कि इस विपत्तिसे हम बचेंगे और पश्चात् अच्छा सत्कर्म करके उन्नत हो जायगे।

१८३ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये हम अपने धनका दान नहीं करेंगे। अपने धनसे पाप होगा ऐसा कोई दुष्कर्म हम नहीं करेंगे।

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप

हमें भोगना न पडे। दूसरेके पापका भी भोग भोगना पडता है। जैसा नेताके, अथवा राजाके प्रमादसे पराभव होता है और सबका सब राष्ट्र परतंत्र हो जाता है और दुःख भोगता है। ऐसे कई भोग हैं कि जो दूसरेके कारण हुए होते हैं। रावणके पापके कारण लंका जली और दुर्योधनके पापके कारण कुरुकुलका नाश हुआ।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे हम पापप्रवाहोंके पार हो जायगे। सत्य और ऋतके अवलंबन करनेसे पाप नहीं होता। इसलिये सत्यनिष्ठा धारण करनी चाहिये।

६९३ पित्र्या द्रुग्धानि, वयं तनूभिः चकृम— पितामाताके किये पाप और स्वयं अपने शरीरसे किये पाप भोगने पडते हैं। पिताके पापसे पैत्रिक रोग होते हैं और अपने किये पापोंसे भी अनेक विपत्तियां प्राप्त होती हैं। इन सबसे अपना बचाव करना चाहिये।

७०२ आगः चकुषे मृळयाति— पाप करनेवालेको भी ईश्वर सुख देता है। यह उसकी दया है। इसलिये हमको सदा ऐसी दक्षता धारण करनी चाहिये कि (७०३ **वरुणे वयं अनागाः स्याम**) ईश्वरके सामने हम निष्पाप सिद्ध हो जाय। दक्षता धारण करनेसे यह हो सकता है। (७१० **वरुणः पाशं अस्मत् विमुमोचत्**) ईश्वर हमें पापके पाशसे मुक्त करे। इसलिये हमे ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये।

तात्पर्य यह कि पापसे अपना बचाव करना चाहिये। पाप वैयक्तिक भी हैं और सामुदायिक और राष्ट्रीय भी पाप होते है। उन सबको करना नहीं चाहिये। उत्तम ज्ञान प्राप्त करके दक्षतासे व्यवहार करनेसे पाप नहीं होते। हम निष्पाप बने यही इच्छा धारण करनी चाहिये।

बल

११७ देवजूतं सहः इयाना— देव जिसकी प्रशंसा करते हैं वैसा बल हमें चाहिये।

११७।३ तरुत्रा वाजैं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हम बल प्राप्त करें।

१३३।२ नः सहस्त्रिणः वाजान् उपमाहि— हमें सहस्रों प्रकारके बल अन्न और धन प्राप्त हो।

२३५।१ यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष— जो तेरे पास सामर्थ्य है, वह तू समान विचारवाले मनुष्योंको सिखाओ।

२४१।२ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे— बडे क्षात्रबलके लिये वह जन्मा है।

२४९ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर इन्द्र नृपते— हे दिव्य बलिष्ठ वज्रधारी शूर इन्द्र राजा! **शवसा आयाहि—** वेगसे आओ, अपने बलके साथ आओ।

२४९ अस्य महे नृम्णाय महिक्षत्राय पौंस्याय भव— इस बडे सामर्थ्य और बडे क्षात्रबलके लिये प्रसिद्ध हो जाओ।

२६० ते सह, त्वं महान् असि— तेरा यह बल है, इस बलके कारण तू बडा है।

२६५।२ सहध्यै वाणीः दधिरे— बल बढानेके लिये वाणीको धारण करो। बल बढानेके लिये ही बोलना है तो बोलो।

२७७ यः हरिवान् दक्षं दधाति, न रिपः न दभन्ति— जो घुडसवार वीर बलका धारण करता है, उसको शत्रु नहीं दबा सकते। बलवान्को शत्रु नहीं दबाते, निर्बलको ही दबाते हैं।

२७९ त्वावसुं कः आ दधर्षति— तेरे धनको कौन धर्षित कर सकता है! क्योंकि तुम महाबलवान् और सामर्थ्यवान् है।

२७९ पार्ये वाजं सिषासति— दुःखसे पार होनेके दिनमें बलकी आवश्यकता होती है।

२९६।१ भुवनेषु त्रयः रेत कृण्वन्ति— भुवनोंमें तीन लोग ही बलवीर्य प्राप्त करते हैं, वे **ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजा** — प्रकाशके मार्गसे जानेवाले आर्योंके तीन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये प्रजाजन है, जो बलवान् हो सकते हैं।

३१३।१ शुष्मात् भानु उदार्त— बलसे सूर्यका उदय होता है।

३१३।२ शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— बलसे पृथिवी भार उठाती है।

४२१।३ शवसा शवांसि— बलवानोंके साथ रहकर बल प्राप्त करेंगे।

५१८।२ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्वधे— बल अपने महत्त्वसे विश्वमें व्यापता है ।

५१८।४ यज्ञमन्मा वृजनं प्र तिराते-- यज्ञमें मन लगानेवाले बल बढाते हैं ।

५१९।१ विश्वा अमूरा वृषणा-- सब मूढता दूर करे और बल बढावें ।

५३९ पूतदक्षं अक्षितं ज्येष्ठ असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु- जो पवित्र, अक्षय, श्रेष्ठ, दीर्घायुदायक बल है वही विश्वविजयी होगा ।

५४१ असुर्याय धारयन्त— बल धारण करते हैं ।

५५१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे मेधसातये— सुवर्णसे वा धनसे युक्त यह मेरी बुद्धि अहिंसक बलके लिये तथा मेधावृद्धिके लिये कार्य करे।

५६७।४ शचीभि नः शक्तं— सामर्थ्योंसे हमें सामर्थ्यवान बनाओ ।

५६८।२ नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु— हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो । हमारा वीर्य बढे ।

६६४।३-५ त्विषे महेशुल्काय ओजः मिमाते— तेजस्विता और बडे धनके लिये बल बढाते हैं ।

९४४ देवहितं वाजं सनेम— वह बल हम प्राप्त करें कि जो विबुधोंका हित करता है ।

वसिष्ठके मंत्रोंमें बलके बढानेके लिये ऐसे वचन हैं । यहां बलका महत्त्व वर्णन किया है और अपना बल बढानेकी भी उत्तेजना दी है । (५१९ **विश्वा अमूरा वृषणा**) सबको क्या करना चाहिये ? दो ही बातें सबको करनी चाहिये, इनमें एक (अ-मूरा, अ-मूढा) मूर्खता दूर करना चाहिये और दूसरी (वृषणा) बलवान् बनना चाहिये। विश्वमें विजयी होनेका यहां ऐसा परिपूर्ण कार्यक्रम इन तीन शब्दोंमें रख दिया है । सब मानवजातिके लिये यह उपदेश उपयोगी है।

२२७ देवजूतं सह इयानाः- देवोंके द्वारा जिस बलकी प्रशंसा की जाती है वह बल हमे चाहिये । राक्षसों द्वारा प्रशंसित बल हमे नहीं चाहिये । प्रकाशके मार्गको बतानेवाला बल देवोंमें वर्णनीय होता है । क्रूरता, घातपात करनेवाला बल राक्षस पसंत करते हैं ।

२३५ ते शुष्मः सखिभ्यः नृभ्यः— शिक्ष तेरे पास जो बल है, वह अपने मित्रोंको सिखादो और उनको भी वैसा ही बलवान् बनाओ । न सिखाते हुए तुम्हारे पास ही बल पडा रहा, कोई विद्या पडी रही तो वह तुम्हारे साथ ही नष्ट होगी, इसलिये जो अपने पास विद्या है वह अपने लोगोंको सिखाओ और विद्याका खुब प्रचार करो । (२४१ **महे क्षत्राय जज्ञे**) तुम्हारा जन्म बडा क्षात्र कर्म करनेके लिये, बडे पुरुषार्थ करनेके लिये है, यह ध्यानमें धारण करो और किसी हीन कर्ममें अपने आपको न फंसाना । (२४९) **देव शुष्मिन् सुवज्र शूर नृपते**) प्रकाशमान् , सामर्थ्यवान्, शस्त्रधारी शूर राजा हो । ये राजाके गुण भी यहां कहे है । ऐसा बलवान् राजा होगा तो वही अपने राज्यका योग्य पालन कर सकेगा और शत्रुओंको दबा सकेगा । (२४९ **महे क्षत्राय नृम्णाय पौंस्याय भव**) बडे क्षात्र तेज तथा बलके बडे कार्यके लिये अपना जन्म है यह बात ध्यानमें धारण कर । अपना जन्म किसी भी हीन कार्यके लिये नहीं है, ऐसा मानना आवश्यक है । (२६० **त्वं महान् असि**) तू बडा है, ऐसा समझो कि मैं बडे कार्य करनेके लिये, बडा होनेके लिये जन्मा हूं। मैं क्षुद्र नहीं हूं, हीन, दीन नहीं हूं । मुझसे बडे कार्य होने हैं, ऐसे विचार मनमें धारण करने चाहिये ।

२६५ सहध्यै वाणी - बल बढानेवाले विचार बोलनेके लिये ही अपनी वाणी है । यदि बोलना है, व्याख्यान देना है, तो बल बढानेके लिये ही बोलना चाहिये । अपना सामर्थ्य बढे, संघटना बढे, अपना प्रभाव बढे इस कार्यके लिये ही बोलना है तो बोले ।

२७७ यः दक्षं दधाति, तं रिपः न दभन्ति— जो बल धारण करता है, उसको शत्रु नहीं दबाते । यह सिद्धान्त कितना अच्छा है । यह सिद्धान्त व्यक्ति, राष्ट्र और समाजको सदा ध्यानमें धारण करना चाहिये । यदि तुमको शत्रु दबा रहे हैं, तो समझो कि तुम्हारे अन्दर बल नहीं है । बल भी दक्षतायुक्त सामर्थ्यवान् चाहिये । तब सब शत्रु दूर हो सकेंगे । बलवान्के (**वसुं कः आदधर्षति**) धनको कौन हाथ लगा सकता है ! जगत्में किसका सामर्थ्य है कि जो बलवानके धनको हाथ लगानेका साहस कर सके ! (२७० **पार्ये वाजं**) दुःखोंसे पार होनेके लिये ही बल चाहिये । बल प्राप्त होते ही दुःख दूर हो सकते हैं ।

२१३ शुष्मात् भानुः उदार्त, पृथिवी भारं बिभर्ति- बलसे ही सूर्य उदय होता है और पृथिवी इतने भारको उठाती है। यह तो तुम प्रत्यक्ष देखो और अपना बल बढाओ। बलके विना इस जगत्मे रहना भी असंभव है। यहांके अस्तित्वके लिये भी बल चाहिये। (५१८ **शुष्मः रोदसी बद्धदे**) बल ही त्रिभुवनमे व्यापता है, अपना प्रभाव फैलाता है, इसलिये बल बढाओ, फिर तुम्हें कोई दबायेगा नहीं। बलकी प्राप्ति करनेके लिये ही यत्न करो।

बडा होनेसे अनुकूलता

३८ अस्य शोचिः अनु वात· अनुवाति— इस अग्निके प्रकाशके अनुकूल होकर वायु बहता है। अग्नि छोटा रहा तो जो वायु उसको बुझाता है, वही वायु अग्निके बढ-जानेपर उसका सहायक होता है। छोटेपनमे विपत्ति है, बडा होनेपर सबकी अनुकूलता हो जाती है।

१८५ महित्वा तविषीभि आ पप्राथ-- अपने महत्त्वसे और अपनी शक्तियोंसे पूर्ण बनता है। प्रसिद्ध होता है। सर्वत्र प्रभावी होता है।

छोटापन दुःखदायक है, छोटेपनमे भय है। दीपको वायु बुझाता है, जो अग्नि प्रज्वलित नहीं हुआ उसको वायु बुझाता है, पर वही अग्नि बडा होकर दावानलका प्रचण्ड स्वरूप धारण करके धधकने लगता है, उस समय जो वायु उसको बुझाता था, वही उसको अनुकूल होता है और उसको अधिक बढनेके लिये सहाय्य करता है। जो छोटेपनमें शत्रु था वही बडा होनेसे मित्र बनता है। इसलिये कहा है-

न अल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखम्।

अल्पमें सुख नहीं, बडा होना ही सुखकारक है। निर्बलतासे शत्रु बढते हैं, समर्थ होनेपर शत्रु ही मित्र होते हैं। सामर्थ्यसे ही शत्रुको मित्र बनाया जा सकता है।

उत्तम मित्र

२१ सचा नः दुर्भूतये दुर्मतय· मा प्रवोचः— हमारा मित्र हमारे भरण-पोषणमें बाधा डालनेके लिये कुविचार न फैला दे।

२१ भ्रमात् चित् सचा मा नशन्त-- भ्रमसे भी हमारा मित्र हमारे नाशका विचार न करे।

❀

१५१।४ विषूचोः सखा सखायं अतरत्-- परस्पर विरोधि परिस्थितियोंमें भी जो मित्र रहता है, वही अपने मित्रका तारण करता है। कष्ट और सुखकी परिस्थितिमें जो सहायक होता है वह सच्चा मित्र है।

१५७।१ ये त्वायन्तः त्वा अनु-अमदन् सख्याय सख्यं वृणानाः— जो अनुकूल रहकर आनन्द बढाते हैं, जो मित्रता करनेके इच्छुक हैं, उनसे मित्रता करना योग्य है।

१६४ सर्वताता भेदं प्रमुषायत्-- यज्ञसे आपसकी फूट दूर होती है। मित्रता बढती है। यज्ञ उसको कहते हैं कि जो (सर्व ताता) सबका तारण करे।

२०० नमो वृधासः विश्वहा सखायः स्याम- अन्नकी वृद्धि करनेवाले सब लोग सर्वदा मित्रभावसे आपसमें रहें।

२१० अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु-- हमारे लिये तेरी मित्रता कल्याण करनेवाली बने।

३४८।३ मित्र· जनं यतति-- मित्र लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है।

६६६ युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं-- तुम्हारी मित्रता, बंधुता हमारे लिये सुखकर हो।

मित्रके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमे ऐसे वचन आते है। विपत्काल और संपत्कालमें जो सहायक होता है वह सच्चा मित्र है। यह मित्रकी व्याख्या मंत्र १५१ मे देखने और मनन करने योग्य है। संपत्कालमे सब पास आते ही है और विनम्रभावसे रहते भी हैं, परंतु विपत्काल आनेपर वे दूर होते है। वे सच्चे मित्र नहीं कहलाते।

१६४ सर्वताता भेदं मुषायत् — यज्ञमे सब भेद मिट जाते हैं। सबका हित जिससे होता है, सर्वत्र जिसका अच्छा प्रभाव होता है, सबका जिससे विकास होता है वह यज्ञ है। यज्ञमें श्रेष्ठोंका सत्कार, सबकी संघटना और दुर्बलोंकी सहाय होनी चाहिये। ये श्रेष्ठ कर्म हैं कि जिससे आपसके भेद दूर होते हैं। और एकता बढती है। (२१० **सख्यानि शिवानि सन्तु**) मित्रता कल्याण करनेवाली हो। दुराचारियोंकी भी संघटना होती है, परंतु वह अधःपात करनेवाली है। इसलिये संघटना शुभ करनेवाली चाहिये।

अपने अन्दर विद्या, शौर्य, धन, शिल्पका सामर्थ्य रहना चाहिये। यह सामर्थ्य अपने अन्दर बढना चाहिये। इसके बढ जानेसे शत्रु भी मित्र होते हैं और हिंसा, कुटिलता आदि समाजमें नहीं रह सकती।

श्रेष्ठ धन

५।१ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं धिया न दाः-- उत्तम वीरोंसे युक्त तथा उत्तम वीर संतानोंसे युक्त प्रशंसित धन बुद्धिके तथा कर्तृत्व शक्तिके साथ हमें चाहिये।

५।२ यातुमावान् यावा यं रयिं न तराति— हिंसक, डाकू ऐसे धनको लूट नहीं सकता। जिस धनके साथ वीर रहते हैं उस धनको लुटेरे लूट नहीं सकते, पर जिस धनके पास संरक्षण करनेके लिये वीर नहीं होते, वह धन लूटा जाता है।

४६ विश्वा सौभगा न दीदिहि-- सब प्रकारके सौभाग्ययुक्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो।

५२ भूरेः अमृतस्य, सुवीर्यस्य रायः ईशे— हम बहुत अन्नके और उत्तम वीर्ययुक्त धनके स्वामी बनें।

५३।१ नित्यस्य रायः पतयः स्याम-- स्थायी रहनेवाले धनके हम स्वामी बनें। हमारे पास धन स्थायी होकर रहे।

५५।४ स्पृहाय्यः सहस्री रयिः समेतु-- स्पृहणीय सहस्रों प्रकारका धन हमारे पास एकत्रित होकर आवे।

६४ तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व-- उस तेजस्वी इष्ट धनको हमें दे दो।

६५ नः पुरुक्षुं रयिं श्रुत्यं वाजं महि शर्म युवस्व- हमें बहुत यश, सुख, बल और कीर्ति देनेवाला धन दो।

७२ वैश्वानरः बुध्न्या वसूनि आददे-- सबका नेता मूल धन प्राप्त कर लेता है। सब कार्योंके निभानेके लिये जो धन आवश्यक है वह नेता प्राप्त करता है।

८२ कदा दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः, वन्तारः भवेम-- हम कब शत्रुके पासके उत्तम धनके स्वामी बनकर, उस धनका बंटवारा करनेवाले बनेंगे?

९१ विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि-- सब देवोंका रत्नकी प्राप्तिके लिये यजन कर।

९१।२ राये पुरंधिं यक्षि-- धन प्राप्तिके लिये बुद्धिमानका सत्कार कर।

९५।२ गिरः द्रविणं भिक्षमाणाः— वाणियां धनकी इच्छा करती है।

९७ उशिजः विशः मन्द्रं यविष्ठं ईळते, सः रयीणां देवान् यजथाय अतन्द्रः अभवत्— सुखकी इच्छा करनेवाली प्रजाएं आनंद बढानेवाले तरुणकी प्रशंसा गाती हैं, वह धनोंकी प्राप्तिके हेतु दिव्यजनोंकी प्रीतिके अर्थ यज्ञ करनेके लिये आलस्य छोडकर सिद्ध रहता है।

१००।१ दाशुषे मर्त्याय अक्तोः वसूनि त्रिः प्रचिकितु.— दान देनेवाले मनुष्यको दिनमें तीनवार धनका दान करना योग्य है। यह सब जानते हैं।

११५ सः न कुवित् वस्वः वनाति— वह हमें बहुत धन देता है।

११६ वीरवतः रयि दशो स्पार्हा— वीर पुरुषका धन उसकी शोभा बढाता है। वीर पुत्रवालेके लिये धन शोभा देता है।

१२० नरः विप्रासः धीतिभिः सातये त्वा उपयन्ति- नेता ज्ञानी लोग बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये तुम्हारे पास आते हैं।

१२२ हे सहसः यहो! स ईशानः त्वं नः राधांसि आ भर, भग वार्यं दातु-- हे बलके पुत्र! तू सामर्थ्यवान होकर हमें भरपूर धन दे, तथा धनवान् प्रभु भी हमें ऐश्वर्य देवे।

१२३ स. वीरवत् यशः वार्यं च दाति- वह वीरोंसे युक्त यश तथा धन देता है।

१२८ स सुब्रह्मा सुशमी वसूनां देवं राधः जनानां योजते— वह उत्तम ज्ञानी और संयमी धनोंमें उत्कृष्ट धनको लोगोंको देता है।

१३५ विदुष्टरः वह्निः, मन्द्रया आसा जिह्वया, नः रयिं आ वह— विद्वानोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी वीर, आनन्द देनेवाली मधुर भाषाके साथ, हमें धन देवे।

१३५।२ मघवद्भ्यः रयिं आ वह-- धनवानोंके पाससे धन ला दो।

१३६।१ **महः श्रवसः कामेन राधांसि अश्व्या मघा ददाति**-- बडे यशकी इच्छासे विशेष सिद्धि देनेवाले धन, अर्थात् घोडे आदि धन वह देता है।

१३८।२ **अग्निः, विधते दाशुषे जनाय, सुवीर्यं रत्नं दधाति**-- यह तेजस्वी अग्नि, कर्ता दाता जनके लिये, उत्तम वीर्य तथा रत्न आदि धन देता है।

१४३ **प्रचेतसः! विश्वा वार्याणि वंस्व**-- हे बुद्धिमान्! सब प्रकारके स्वीकार करने योग्य धन हमें दो।

१४५ **महः इयानः नः रत्ना विदध** - महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्नोंको दे दो।

१४६।१ **नः पितरः, विश्वा वामाः, सुदुघाः गावः अश्वाः असन्वन्**,-- हमारे पूर्वजोंने, सब प्रकारके धन, दुधारू गौवें और उत्तम घोडे प्राप्त किये थे।

१४६।२ **त्वं देवयते वसु वनिष्ठः**-- तू देव बननेकी इच्छा करनेवालेके लिये धन देता है।

१४७ **विदुः कविः सन्, पिशा, गोभिः अश्वैः गिरः त्वायतः अस्मान् राये अभिशिशीहि**-- तू ज्ञानी और कवि होता हुआ, सुन्दर रूप, गौवें, घोडे आदिके साथ, तुम्हारे वर्णनकी स्तुतियोंको प्रयुक्त करनेवाले हम सबको धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम संस्कार संपन्न कर।

१४८ **रायः पथ्या अर्वाची एतु**-- धन प्राप्तिका मार्ग हमारेतक पहुंचनेवाला हो।

१४९।२ **वसिष्ठः दुधुक्षन् ब्रह्माणि उपसृजे**-- वसिष्ठ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ काव्योंको करता है।

१५१।२ **मत्स्यासः, राये, निशिता आपिः इव**-- मत्स्यके समान परस्परको खा जानेवाले, धन प्राप्त करनेके लिये, बडी तेजीसे कार्य करनेवाले होते हैं और आपसमें मित्रभावसे भी रहते हैं।

१५२।३ **भृगवः, द्रुह्यवः, श्रुष्टिं चक्रुः**-- भरण पोषण करनेके इच्छुक, तथा द्रोह करनेवाले, (धन प्राप्त करनेके लिये स्वेच्छासे परस्पर) सेवा भी करते हैं।

१६५ **पूर्वाः नूतनाः च रायः सुमतयः संचक्षे**-- पूर्व समयके तथा इस समयके धन तथा सुविचार अवर्णनीय हैं। प्रशंसा योग्य है।

तीन प्रकारका धन

१८८।१ **पूर्वः अपराय शिक्षन्**-- जो पूर्वज वंशजको देता है, जैसा पित्र्य धन पुत्रको मिलता है।

१८८।२ **देष्णं कनीयसः ज्यायान् अयत्**-- जो धन कनिष्ठमें श्रेष्ठको मिलता है जैसा राजाको प्रजासे कर मिलता है।

१८८।३ **अमृतः दूरं परि आसीत्**-- जो धन दूर देशमें जाकर वहां अमर जैसा रहकर प्राप्त होता है।

१८८।४ **चित्र्यं रयिं नः आभर**-- यह विलक्षण धन हमें भरपूर भर दो।

१९० **रायः काम आगन्, त्वं वस्वः न आशकः**- धनकी कामना मेरे पास आगयी है। अतः धन हमें दे दो।

१९१।२ **वस्वी शक्ति सु अस्ति**-- धनकी उत्तम शक्ति हमारे पास है।

१९८ **इन्द्रः विषद्य मघानि दयते**-- इन्द्र शत्रुका पराभव करके आनंददायक धन देता है।

२१६ **स वीरवत् गोमत् नः धातु**-- वह वीरोंसे युक्त तथा गौओंसे युक्त धन हमें देवे।

२११ **अयं वसूनां इष्टे**-- यह धनोंका स्वामी बनना चाहता है।

२२२।१ **नः वार्यस्य पूर्धि**-- हमें संरक्षणके योग्य धनसे भरपूर भर दे।

२२२।३ **सुवीरां इषं पिन्व**-- उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमें मिले।

२२४।३ **वसूनां संभरणं नः आभर**-- धनोंका समूह हमारे पास ले आओ।

२२५।५ **असे द्युम्नं रत्नं अधि धेहि**- हमें तेजस्वी रत्न प्रदान कर।

२३२।२ **एकः मघानां विभक्ता तरणिः**- एक ही वीर धनका दाता है और वही तारक भी है।

२३४।३ **शूरः नृषाता शवसः चकानः**- शूर वीर मनुष्योंके लिये धनका बटवारा करनेके समय बलको देखता है।

२३५।३ **त्वं विचेताः, परिवृतं राधः न अपवृधि**- तू ज्ञानी है, इसलिये इस गुप्त धनको भी हमारे सामने प्रकट कर।

२३६।१ दाशुषे वसूनि ददाति— दाताको धन देता है।

२३६।३ उपस्तुतः चित् राधः अर्वाक् चोदत्- प्रशंसित होनेपर वह धन हमारे पास भेजता है।

२३७।१ अस्य अनूना दक्षिणा, सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय- इसकी दी हुई न्यूनता-रहित धनकी दक्षिणा, समान विचारवाले वीरोंके लिये इष्ट धन देती है।

२३८।१ नः राये वरिवः कृधि- हमें ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिये श्रेष्ठ धन दे दो।

२३८।१ ते मनः मघाय आववृत्यां- तेरा मन धन प्राप्तिके लिये हम आकर्षित करते हैं।

२३८।३ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः- गौवें, घोडे और रथोंसे युक्त धन तुम्हारे पास है।

२४३।१ महः राधसः रायः नः— बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें मिलें।

२४९।३ अस्य रायः वृधे भव- इस धनको बढाने-वाला हो।

२५२।१ मघानि ददत - धनोंका दान सत्पात्रमें करे।

२५२।२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ- ज्ञानियोंको उपमा देने योग्य धन दो।

२५२।३ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत- ऐश्वर्यवान् होकर दीर्घायु प्राप्त करें।

२५६ नः वाजयुः गव्युः हिरण्ययुः भव— हमें अन्न, गौवें और सुवर्ण देनेवाला हो।

२६८ रायस्कामः वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रः पितरं न, हुवे— धनकी इच्छा करनेवाला वज्रधारी उत्तम दक्ष वीरको, पुत्र पिताको बुलानेके समान, बुलाता है।

२७० सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्, दित्सन्तं न किः आ मिनत्- तत्काल जो सैंकडों और सहस्रों प्रकारके धन देता है, उस दाताको कोई रोक नहीं सकता।

२७२ मघवन्! धनानां वरूथं भव- हे धनपते! तूं धनोंका कवच जैसा संरक्षक बन।

२७२ त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि- तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुका धन हम सब बंटवारा करके लेंगे।

२७२ दुर्नशं गयं आभर- जिसका नाश नहीं होता ऐसा घर और धन हमें दो।

२७४।२ महे आतुजे, राये, कृणुध्वम्- बडे शत्रु-विनाशके लिये, तथा धन प्राप्त करनेके लिये, प्रयत्न करो।

२८१ अवमं मध्यमं वसु तव इत्- अवम, मध्यम और परम धन तुम्हारी ही है।

२८१ विश्वस्य परमस्य राजसि- सब परम श्रेष्ठ धनका तू राजा है।

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः आसि- तू सबका धन देनेवाला करके प्रसिद्ध है।

२८३।१ एतावत् अहं ईशीय- इतना धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं।

२८३।२ हे रदावसो! स्तोतारं दिधिषेय- हे धन दाता! स्तोताकी सुरक्षा हो।

२८४ कुहाचिद्विदे महयते दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्- कहीं भी रहनेवाले अपनी उन्नति करनेवालेको प्रतिदिन हम धन देते हैं।

२८५।१ तरणिः, पुरंध्या युजा, वाजं सिषासति- त्वरासे कार्य करनेवाला, अथवा दुःखोंसे तैरकर पार होनेवाला, धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर, धन, बल और अन्न प्राप्त करता है।

२८६।१ दुष्टुतिः मर्त्यः वसुः न विन्दते- निंदनीय मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

२८६।१ स्रेधन्तं रयिः न नशत्- हिंसकके पास धन नहीं पहुंचता।

२८३।३ पार्ये दिवि सुशक्तिः इत् देष्णं विन्दते- दुःखसे पार होनेके समय उत्तम शक्तिवाला ही धन प्राप्त करता है।

२८८।२ अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः, त्वा हवामहे— घोडे, गौवें और अन्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले हम तुम्हारी भक्ति करते हैं।

२८९।१ ज्यायः कनीयसः सतः तत् अभि आभर- बडा भाई छोटे भाईको धनका भाग देवे।

२८९।२ सनात् पुरुवसुः, भरे भरे हव्यः आसि— तू सदासे बहु धनवाला है और प्रत्येक स्पर्धामें, सहायार्थ बुलाने योग्य है।

१९०।२ नः वसु सुवेदा कधि— हमें धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर।

३२४ नृषु श्रवः धुः— मनुष्योंमें धनका धारण करो।

३१७ अरमतिः अस्मे वसूयुः स्यात्- उत्तम बुद्धिवाला हमें धन देनेवाला हो।

३१८ रातिषाचः नः वसूनि रासन्- दान देनेवाले हमे धन देवें।

३१९ नः रायः पर्वता आप रातिषाचः औषधी. द्यौः वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी उभे रोदसी परिपासतः— हमारे धनका संरक्षण पर्वत, नदियों, औषधियो वनस्पतियोंके साथ पृथिवी करें।

३३० धियध्यै रायः धरुणं स्याम- धारण करने-योग्य धनके हम आधार बने।

३५३।४ ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्— वे वीर हमारे सुयोग्य धनको बढावे।

३५८।१ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ— बडे अथवा अल्प धनके दान करनेके समय देने योग्य ही धन तुम देते हो।

३५८।२ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा— तुम्हारे दोनो हाथ धनसे भरपूर भरे हैं। देनेके समय कंजूसी नहीं है।

३५८।३ सूनृता वसव्या न नियमते – तुम्हारी दानके लिये प्रवृत्त हुई वाणी किसीके द्वारा रोकी नहीं जाती।

६६३।१ राधांसि नः आ यन्तु— बहुत धन हमारे पास आ जाय।

३६३।२ रातौ रायः नः आयन्तु— दानके समय धन हमारे पास आजाय।

३६४ नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः— निःसंदेह ऐश्वर्य मनुष्यों द्वारा पूजनीय है।

३६४ पुरूवसुः रत्ना विदधाति— बहुत धनवाला रत्नोंका दान करता है।

३६९ जास्पतिः रत्नं नः अनुमंसीष्ट— प्रजाका पालक राजा धन हमें देवे।

३६९ उग्रः भगं अवसे जोहवीति— उग्र वीर धनको अपनी सुरक्षाके लिये प्राप्त करता है। पर (**अध अनुग्रः रत्नं याति**) जो वीर नहीं वह केवल धनके पास जाता है।

३७७।३ अविदस्यं सदासां रयिं धात- अक्षय तथा सदा टिकनेवाले धनका धारण करो।

३७७ मर्त्यानां कामं आसिन्वन् नक्षन्— मर्त्योंकी धन कामनाको प्रतिबंध न करो।

३७८ नः उपमं अर्क यच्छन्तु— हमें उत्तमसे उत्तम धन मिले।

३७९ विदथ्या श्रुष्टिः सं एतु — संगठनसे मिलनेवाला धन हमे मिले।

३७९ अस्य रत्निनः विभागे स्याम- इस रत्नवानके दानमें हम दानके अधिकारी हो।

३८० द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु- देवभक्तको धन मिले।

३८८ प्रणेतः सत्यराध भगः- उत्तम नेता सत्यप्रतिज्ञ भाग्यवान है।

३८९ वयं इदानीं भगवन्तः स्याम— हम सब धनवान् बने।

३९० भग एव भगवान् अस्तु, तेन वयं भगवन्तः स्याम- भगदेव भाग्यवान है, उससे हम धनवान् हो।

३९१ वाजिनः अश्वाः रथं इव, वसुविदं भगं अर्वाचीनं- जैसे बलवान घोडे रथको खीचकर लाते है, वैसे ही धनवान भगको-धनको हमारे समीप लाया जावे।

३९६ अतिथिः अग्निः वीरस्य रेवतः दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत् , दमे सुप्रीतः इयत्यै विशे वार्यं दाति- अग्नि धनवान् वीरके घरमे सुखसे प्रकाशता है, तब वह उसके घरमें संतुष्ट होकर उस प्रजाको धन देता है।

४०२।१ वसूनां ज्येष्ठं महः अद्य आगंतन- धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्त्वका धन हो वही हमारे पास आज ही आ जावे।

४०३ नः विक्षु आ दशस्य- हमारी प्रजाजनोंमे धन दो।

४०३ वयं राया युजा— हम धनसे युक्त हो।

४०९ सुरत्नः सविता हस्ते पुरूणि नर्या दधान , अश्वैः वहमानः भूम निवेशयन् प्रसुवन् — उत्तम रत्नों-वाला सविता हाथमे मनुष्योंका हित करनेवाले बहुत धन धारण करके, घोडोंके रथसे आकर सबका निवास करावें और सबका ऐश्वर्य बढावें।

४१०।१ हिरण्यया बृहन्ता शिथिरा बाहू- सुवर्णसे भरे बडे विशाल तथा फैले हुए इस सूर्यके बाहू हैं जिनसे वह धन देता है।

४११ सहावा वसुपतिः वसूनि नः आ साविषत्- बलवान् धनपति हमें धन देता है। **उरूची अमतिं विश्रयाणः —** विस्तृत प्रगतिका आश्रय देता है।

४१२ सुजिह्वः पूर्णगभस्तिः सुपाणिः सविता इमा गिरः, सः चित्रं बृहत् वयः अस्मे दधत्- उत्तम भाषण करनेवाले हाथोंमें पूर्ण भर कर धन लेनेवाले उत्तम हाथवाले सविताकी यह प्रशसा है कि वह विलक्षण और बडा धन हमें देवे।

४२० सिन्धवः वरिवः नः दधातन- नदियां हमे श्रेष्ठ धन दें।

४२२।२ विभुभिः विभ्वः स्याम- वैभववानोंके साथ रहकर हम वैभववान हों।

४२४।१ देवासः ! नः वरिवः कर्तन— हे देवो ! हमें धन दे दो।

४२४।२ वसवः अस्मे इषं सं दर्दीरन्- वसुदेव हमें अन्न अथवा इष्ट धन दे।

४३८ तुरण्यवः अंगिरसः सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त- त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस ऋषि सवितादेवसे रत्नोंको प्राप्त करते रहें।

४४१ सुदासे पुरूणि रत्नधेयानि सन्ति, अस्मे धत्तं- उत्तम दाताके पास बहुत धन होगा, वह हमारे लिये दे दे।

४४२ यत् त्वा ईमहे, तत् नः प्रतिजुषस्व- जो तुम्हारे पास हम मांगेगे वह धन हमे दे डालो।

४४३ गयस्फानः, गोभिः अश्वैः अजरासः स्याम- घरका विस्तार करनेवाले होकर, गौओं और घोडोंसे युक्त होकर हम तरुण बनें।

५१४।१ शुरुधः ऋतावानः नः सहस्रं विरप्शन्तु- शोकको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ वीर हमें सहस्रों प्रकारके धन दें।

५१४।२ चन्द्राः उपमं अर्कं नः आ यच्छन्तु— आनन्द देनेवाले वीर पूजनीय धन हमें दें।

५२४।२ नः कामं पूरयन्तु- हमारी कामनाके अनुसार धन देकर कामना पूर्ण करें।

५२७।१ त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु— अपने पुत्र पौत्रोंके लिये धन दे।

५३६।२ देवगोपाः इषा सह मदेम- देवों द्वारा सुरक्षित होकर हम अन्नसे आनंदित होंगे।

५४९ अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः राजानः महः ईशते- न दब जानेवाले नियमोंके पालक राजा धनके स्वामी बनते हैं। धन प्राप्त करते हैं।

५६५।३ वसुमता स्वर्विदा रथेन पूर्वाभिः पथ्याभिः आयातं- धनवाले तेजस्वी रथसे आप पूर्वके मार्गसे ही आइये।

५६६ वां अवः युवाकुः वसूयुः- तुम्हारा संरक्षण सुख तथा धन देनेवाला है।

५६७।१ वसूयुं अमृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं — धन देनेवाली अहिंसक बुद्धिको दानके लिये सिद्ध करो।

५६९ अस्मे रातः एष स्यः निधिः हितः— हमे दिया यह खजाना हमारे लिये सुखदायी हो।

५७१।१ गव्याः अश्वयाः मघानि पृञ्चन्तः— गौ, अश्व रूप धन तुम देते हो।

५७१।२ राया मघदेयं जुनन्ति, मघवद्भ्यः असश्चता भूतं — जो धनी धनका दान करते हैं उन दानियोंके साथ रहो।

५७२ रत्नानि धत्तं— रत्नोंका धारण करो।

६०७ पांचजन्येन राया विश्वतः आयातं— पंचजनोंके हित करनेवाले धनके साथ चारों ओरसे तुम आओ।

६२०।३ चित्रं यशसं रयिं धेहि— यशस्वी धन दे।

६२०।१-२ महे सुविताय बोधि, सौभगाय प्रयन्धि- बडे सुख और सौभाग्यके लिये जाग, यत्न कर।

६२६।१ गोमत् अश्वावत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि— गौवें, घोडे, वीर और अन्न जिसके साथ है ऐसा धन दे।

६३१।३ वसूनि याचमानाः — धनोंको प्राप्त करते हैं।